श्रीभागवतामृतकणा

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीभागवतामृतकणा

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा अनुवादित एवं सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशक—

श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी (सेवारत्न)

द्वितीय संस्करण—५००० प्रतियाँ

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद की तिरोभाव तिथि

श्रीचैतन्याब्द ५१९

१९ दिसम्बर २००५

प्राप्ति स्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)
०५६५–२५०२३३४

श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५–२४४३२७०

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी–३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११–२५५३३५६८

श्रीगिरिधारी गौड़ीयमठ
राधाकुण्ड रोड,
गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०५६५–२८१५६६८

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५–२४४३१०१

प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्य-मुकुटमणि महामहोपाध्याय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित यह श्रीभागवतामृतकणा ग्रन्थ श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तरङ्ग प्रियपरिकर रसतत्त्वाचार्य श्रील रूपगोस्वामी द्वारा रचित श्रीलघुभागवतामृत ग्रन्थका सार संकलन है। यह ग्रन्थ आकारमें अतिशय क्षुद्र होने पर भी इसमें व्रजस्थित नन्दनन्दन-राधाकान्त-रासबिहारी-श्रीकृष्ण असमोर्द्ध ऐश्वर्य-माधुर्य परिमण्डित सर्वश्रेष्ठ उपास्य तत्त्व हैं। यह असमोर्द्ध उपास्य तत्त्व श्रीकृष्ण ही स्वयंरूप हैं। इनको ही श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंमें स्वयं-भगवान् कहा गया है। स्वयंरूप ही मूलतत्त्व हैं। अन्यान्य जितने भी भगवदवतार आदि हैं, उनकी भगवता इन स्वयंरूप भगवान्से ही है। किन्तु स्वयंरूप कृष्णकी भगवत्ता स्वतःसिद्ध है। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीने इस ग्रन्थमें संक्षेपमें श्रील रूपगोस्वामीका अनुसरण करते हुए स्वयंरूपतत्त्व (नन्दनन्दन श्रीकृष्ण), स्वयं प्रकाशतत्त्व, विलासतत्त्व (श्रीबलदेव एवं वैकुण्ठनाथ), अंशतत्त्व (मत्स्यकूर्मादि), आवेशतत्त्व (व्यास-नारदादि), तीन-पुरुषावतार, तीन-गुणावतार, असंख्य लीलावतार (चतुःसन, नारद, वराहादि), मन्वन्तरावतार (यज्ञ, विष्णु, सत्यसेन आदि चौदह अवतार), युगावतार (शुक्ल-रक्तादि), प्राभव (मोहिनी, धन्वन्तरि आदि) वैभव (मत्स्यकूर्मादि), परावस्थ (नृसिंह-राम-कृष्ण), कृष्णके वासस्थान अर्थात् धाम (व्रज, मधुपुरी, द्वारका और गोलोक), श्रीकृष्णका पूर्णत्व, पूर्णतरत्व और पूर्णतमत्व (क्रमशः द्वारका, मथुरा और वृन्दावनमें), श्रीकृष्णकी लीलाएँ (प्रकट

और अप्रकट लीलाएँ) श्रीकृष्णकी बाल्यादि लीलाओंका नित्यत्व तथा भगवद्भक्तोंके तारतम्य आदि विषयोंका संक्षिप्त परिचय दिया है। इन तत्त्वोंसे अवगत हुए बिना सर्वोत्तम उपास्य तत्त्वका निर्णय होना कठिन ही नहीं असम्भव है। निष्कपट साधक इस ग्रन्थका अनुशीलन कर सहज ही आराध्य तत्त्वका निर्णय कर सकते हैं। श्रीलचक्रवर्ती ठाकुरने सरल-सहज बोधगम्य प्राञ्जल संस्कृत भाषामें इस ग्रन्थका संकलन इस रूपमें किया है कि संस्कृत भाषामें अनभिज्ञ साधारण साधक भी इस ग्रन्थको अच्छी तरहसे समझ सकते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका जीवन-चरित्र

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर नदिया जिलेमें राढ़ीय श्रेणी विप्रकुलमें आविर्भूत हुए थे। ये हरिवल्लभके नामसे प्रसिद्ध थे। रामभद्र और रघुनाथ नामक इनके दो बड़े भाई थे। बाल्यकालमें इन्होंने देवग्राम नामक एक ग्राममें व्याकरण पाठ समाप्त कर मुर्शिदाबाद जिलेके शैयदाबाद नामक ग्राममें (गुरुगृहमें) भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन किया। इन्होंने बिन्दु, किरण और कणा—इन तीनों ग्रन्थोंकी रचना शैयदाबाद ग्राममें अध्ययन करते समय ही की थी। कुछ दिनों बाद ये गृहत्याग कर वृन्दावन चले आये। यहीं पर इन्होंने विभिन्न ग्रन्थोंकी रचनाएँ व टीकाएँ लिखीं।

श्रीमन्महाप्रभु और उनके अनुगत षड्गोस्वामियोंके अप्रकट होने पर शुद्धभक्ति-धारा श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द—तीनों प्रभुओंके माध्यमसे प्रवाहित हो रही थी। श्रील नरोत्तम ठाकुरकी शिष्य परम्परामें श्रील विश्वनाथ

चक्रवर्ती ठाकुर चतुर्थ–पुरुष हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशयके शिष्यका नाम श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती महाशय था। ये मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत बालूचर गम्भिलामें रहते थे। इनको कोई पुत्र न था, केवलमात्र एक कन्या थी जिसका नाम विष्णुप्रिया था। श्रील नरोत्तम ठाकुरके एक वारेन्द्र श्रेणीके दूसरे शिष्य भी थे, जिनका नाम रामकृष्ण भट्टाचार्य था। इन रामकृष्ण भट्टाचार्यके कनिष्ठ पुत्रका नाम कृष्णचरण था। इन कृष्णचरणको श्रीगङ्गानारायणने दत्तकपुत्रके रूपमें ग्रहण किया। श्रीकृष्णचरणके शिष्य राधारमण चक्रवर्ती थे और ये श्रीराधारमण ही श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके श्रीगुरुदेव हैं। रासपञ्चाध्यायकी सारार्थदर्शिनी टीकाके प्रारम्भमें इन्होंने ऐसा लिखा है—

श्रीरामकृष्णगङ्गाचरणान् नत्वा गुरुनुरुप्रेम्नः।
श्रीलनरोत्तमनाथ श्रीगौराङ्गप्रभुं नौमि॥

अर्थात् इस श्लोकमें श्रीरामसे उनके गुरुदेव श्रीराधारमण, कृष्णसे परमगुरुदेव श्रीकृष्णचरण, गङ्गाचरणसे परात्पर गुरुदेव श्रीगङ्गानारायण, नरोत्तमसे परमपरात्पर गुरुदेव श्रीनरोत्तम ठाकुर और 'नाथ' शब्दसे श्रील नरोत्तम ठाकुरके गुरुदेव श्रीलोकनाथ गोस्वामीको समझना चाहिए। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर श्रीमन्महाप्रभु तक अपनी गुरुपरम्पराको प्रणाम कर रहे हैं, ऐसा सूचित होता है।

श्रीनिवासाचार्यकी कन्याका नाम हेमलता ठाकुरानी था। ये परमविदूषी तथा परम–वैष्णवी थीं। इन्होंने अपने रूपकविराज नामक एक उदासीन शिष्यको गौड़ीय–समाजसे बहिष्कृत कर दिया था। तबसे वे रूपकविराज गौड़ीय–वैष्णव–समाजमें

'अतिबाड़ी' नामसे परिचित हुए। उन्होंने गौड़ीय-वैष्णवोंके सिद्धान्तके विरुद्ध अपना एक नया मत स्थापन किया कि केवलमात्र त्यागी व्यक्ति ही आचार्यका कार्य कर सकता है। गृहस्थ व्यक्ति भक्तिका आचार्य नहीं हो सकता। विधिमार्गका सम्पूर्णरूपसे अनादर कर उच्छृंखलतापूर्ण रागमार्गका प्रचार करना ही इनका उद्देश्य था। श्रवणकीर्त्तनका त्यागकर केवल स्मरणके द्वारा ही रागानुगाभक्ति सम्भव है—ऐसा इनका नवीन मत था।

सौभाग्यवशतः श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर उस समय वर्त्तमान थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतके तृतीय-स्कन्धकी सारार्थ-दर्शिनी टीकामें इसका प्रतिवाद किया। आचार्यवंशमें नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्र प्रभुके शिष्यवंशमें तथा अद्वैताचार्यके त्यक्त पुत्रोंके वंशमें गृहस्थ होकर गोस्वामी उपाधि प्रदान और ग्रहण करना उचित नहीं है—रूपकविराजके ऐसे विचारका श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने प्रतिवाद किया। उन्होंने प्रमाणित किया कि आचार्यवंशके योग्य अधस्तन गृहस्थ सन्तानोंके द्वारा भी आचार्यका कार्य करना असङ्गत नहीं है। परन्तु वंश-परम्परा क्रमसे धन और शिष्यके लोभसे आचार्यकुलमें उत्पन्न अयोग्य सन्तानोंके लिए अपने नामके साथ 'गोस्वामी' शब्दका प्रयोग शाश्वत-शास्त्र विरोधी और नितान्त अवैध कार्य है—ऐसा भी प्रमाणित किया। इसलिए उन्होंने (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने) आचार्यका कार्य करने पर भी अपने नामके साथ 'गोस्वामी' शब्दका प्रयोग कदापि नहीं किया। उन्होंने आधुनिक कालके विचारहीन अयोग्य आचार्य सन्तानोंको शिक्षा देनेके लिए ही ऐसा किया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जिस समय अत्यन्त वृद्ध हो गये थे तथा अधिकांश समय वे अर्द्धबाह्य और अन्तर्दशामें स्थित होकर भजनमें विभोर रहते थे, उसी समय जयपुरमें श्रीगौड़ीय-वैष्णवों तथा स्वकीयावादी अन्यान्य वैष्णवोंमें एक विवाद छिड़ गया। उस समय द्वितीय जयसिंह जयपुरके नरेश थे। विरुद्ध पक्षवाले वैष्णवोंने द्वितीय जयसिंहको यह समझाया कि श्रीगोविन्ददेवके साथ श्रीमती राधिकाजीकी पूजा शास्त्र-सम्मत नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रीमद्भागवत या विष्णुपुराणमें श्रीमती राधिकाके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं है। श्रीमती राधिका वैदिक विधियोंके अनुसार श्रीकृष्णकी विवाहित पत्नी नहीं हैं। दूसरी बात गौड़ीय-वैष्णव साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं हैं। वैष्णव सम्प्रदाय चार ही हैं, जो अनादि कालसे चले आ रहे हैं। उनके नाम हैं—श्री-सम्प्रदाय, ब्रह्म-सम्प्रदाय, रुद्र-सम्प्रदाय और सनक-सम्प्रदाय। कलियुगमें इन सम्प्रदायोंके प्रधान आचार्य क्रमशः श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और श्रीनिम्बादित्य हैं। गौड़ीय-वैष्णव इन चारों सम्प्रदायोंसे बहिर्भूत हैं, अतः वे शुद्ध साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं हैं। विशेषतः इस वैष्णव-सम्प्रदायका अपना कोई ब्रह्मसूत्रका भाष्य नहीं है, अतएव इसे परम्परागत वैष्णव सम्प्रदाय नहीं माना जा सकता है। उसी समय महाराज जयसिंहने श्रीवृन्दावनके प्रधान गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंको श्रील रूपगोस्वामीका अनुगत जानकर श्रीरामानुजीय वैष्णवोंके साथ विचार करनेके लिए आह्वान किया। अत्यन्त वृद्ध तथा भजनानन्दमें विभोर रहनेके कारण श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने अपने छात्र गौड़ीय-वैष्णव-वेदान्ताचार्य, पण्डितकुलमुकुट महामहोपाध्याय

श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण और अपने शिष्य श्रीकृष्णदेवको जयपुरमें विचार करनेके लिए भेजा।

जाति-गोस्वामीगण अपने मध्व-सम्प्रदायके आनुगत्यको भूल चुके थे। साथ ही उन्होंने वैष्णवोंके वेदान्त सम्बन्धी विचारधाराका अनादर कर गौड़ीय-वैष्णवोंके लिए एक महान विपत्तिका आह्वान किया था। श्रील बलदेव विद्याभूषणने अकाट्य युक्तियों और सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा यह प्रमाणित किया कि गौड़ीय सम्प्रदाय मध्वानुगत शुद्ध वैष्णव-सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायका नाम श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय है। हमारे पूर्वाचार्य श्रील जीवगोस्वामी, कविकर्णपूर आदिने इसे स्वीकार किया है। श्रीगौड़ीय-वैष्णवजन श्रीमद्भागवतको ही वेदान्तसूत्रका अकृत्रिम भाष्य मानते हैं। इसलिए गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें स्वतन्त्ररूपसे वेदान्तसूत्रके किसी भाष्यकी रचना नहीं की गयी है। विभिन्न पुराणोंमें श्रीमती राधिकाके नामका उल्लेख है, वे ह्लादिनी स्वरूपा, श्रीकृष्णकी नित्यप्रिया हैं। श्रीमद्भागवतके विभिन्न स्थलोंमें विशेषतः दसवें स्कन्धकी व्रजलीलाके वर्णन प्रसङ्गमें सर्वत्र ही श्रीमती राधिकाका अत्यन्त गूढ़रूपसे उल्लेख है। सिद्धान्तविद्, रसिक और भावुक भक्त ही इस गूढ़ रहस्यको समझ सकते हैं। श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने उस विद्वत्सभामें प्रतिपक्षके सभी तर्कोंको खण्ड-विखण्डकर तथा सन्देहोंको दूरकर श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंका मध्वानुगत्य प्रमणित किया। विपक्ष निरुत्तर हो गया, फिर भी उन्होंने श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका कोई वेदान्त भाष्य न होने पर उन्हें शुद्ध पारम्परिक वैष्णव माननेसे अस्वीकार कर दिया। तब वहीं पर ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने ब्रह्मसूत्रके 'श्रीगोविन्द-भाष्य' नामक सुप्रसिद्ध

गौड़ीय-भाष्यकी रचना की। इस प्रकारसे श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरमें पुनः श्रीश्रीराधागोविन्दकी सेवापूजा प्रारम्भ हुई तथा गौड़ीय-वैष्णवोंकी श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके रूपमें मान्यता स्वीकार की गयी। श्रीचक्रवर्ती ठाकुरके सम्मति क्रमसे ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीगोविन्द-भाष्यकी रचना की तथा गौड़ीय-वैष्णवोंका श्रीमध्वानुगत्य प्रमाणित किया—इस विषयमें तनिक भी सन्देहका अवकाश नहीं है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका यह साम्प्रदायिक कार्य गौड़ीय-वैष्णवोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरसे लिपिबद्ध रहेगा।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वरचित 'मन्त्रार्थदीपिका'में एक विशेष घटनाका वर्णन किया है—किसी समय उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतका पठन-पाठन करते हुए कामगायत्रीके अर्थसे सम्बन्धित निम्नलिखित पयारों पर विचार किया—

कामगायत्री-मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्द्ध-चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय,
त्रिजगत् कैला काममय॥

(चै॰ च॰ म॰ २१/१२५)

अर्थात् कामगायत्री श्रीकृष्णका स्वरूप है। इस मन्त्रराजमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं तथा इस मन्त्रका प्रत्येक अक्षर पूर्ण चन्द्र है। ये चन्द्रसमूह कृष्णको उदित कराकर त्रिजगतको प्रेममय बना देते हैं।

इन पद्योंके प्रमाणसे काम-गायत्रीमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं, किन्तु कामगायत्रीमें कौनसा अर्द्धाक्षर है, बहुत चिन्ता करने पर भी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती इसे न समझ सके।

व्याकरण, पुराण, तन्त्र, नाट्य तथा अलङ्कार आदि शास्त्रोंमें विशेषरूपसे छानबीन करने पर भी उन्हें कहीं भी अर्द्धाक्षरका उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ। उन सभी शास्त्रोंके अनुसार स्वर और व्यंजनके भेदसे उन्हें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख मिला, किन्तु कहीं भी अर्द्धाक्षरका कोई प्रमाण नहीं मिला। श्रील जीवगोस्वामी द्वारा रचित श्रीहरिनामामृत व्याकरणके संज्ञापादमें स्वर व्यंजनके प्रसङ्गमें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख देखा। मातृकान्यास आदिमें भी मातृका रूपके ध्यानमें कहीं भी उन्हें अर्द्धाक्षरका उल्लेख नहीं मिला। बृहन्नारदीय पुराणमें राधिकाके सहस्र-नाम-स्तोत्रमें वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाजीको पचास वर्णरूपिणी कहा गया है। उसे देखकर श्रील चक्रवर्ती ठाकुरका सन्देह और भी बढ़ गया, उन्होंने सोचा कि क्या श्रील कविराज गोस्वामीने भ्रमवशतः ऐसा लिखा है? किन्तु उनमें भ्रम होनेकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि वे भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे सर्वथा रहित सर्वज्ञ हैं। यदि उक्त मन्त्रमें खण्ड 'त्'को अर्द्धाक्षर मानते हैं तो श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी क्रमभङ्गके दोषसे दोषी ठहरते हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसा वर्णन किया है—

सखि हे, कृष्णमुख—द्विजराज-राज।
कृष्णवपु-सिंहासने, वसि' राज्य शासने,
करे सङ्गे चन्द्रेर समाज॥
दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।
ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,
सेइ एक पूर्णचन्द्र मानि॥

करनख—चान्देर हाट, वंशी—उपर करे नाट,
तार गीत मुरलीर तान।
पदनख—चन्द्रगण, तले करे नर्त्तन,
नूपुरेर ध्वनि यार गान॥

(चै॰ च॰ म॰ २१/१२६-१२८)

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उक्त पंक्तियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको पहला एक चन्द्र बतलाया है, तत्पश्चात् उनके दोनों गालोंको एक-एक पूर्णचन्द्र माना है, ललाटके ऊपरी भागमें चन्दनबिन्दुको चौथा पूर्णचन्द्र माना है तथा चन्दनबिन्दुके नीचे ललाट प्रदेशको अष्टमीका चन्द्र अर्थात् अर्द्धचन्द्र बतलाया है। इस वर्णनके अनुसार पञ्चम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, किन्तु खण्ड 'त्'को अर्द्धाक्षर माननेसे अन्तिम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, पञ्चम अक्षर अर्द्धाक्षर नहीं हो पाता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अर्द्धाक्षरका निर्णय न कर पानेके कारण बड़ी द्विविधामें फँस गये। उन्होंने विचार किया यदि मन्त्राक्षरकी स्फूर्ति न हो, तो मन्त्रदेवताकी स्फूर्ति होना असम्भव है, अतएव उपास्य देवताका दर्शन न होनेसे मर जाना ही अच्छा है। ऐसा सोचकर वे देह-त्याग करनेकी अभिलाषासे रातमें राधाकुण्डके तट पर उपस्थित हुए। रात्रिका द्वितीय प्रहर व्यतीत होने पर अकस्मात् तन्द्राकी स्थितिमें उन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन किया। श्रीराधाजीने बड़े स्नेहसे कहा—"हे विश्वनाथ! हे हरिवल्लभ! खेद मत करो, श्रीकृष्णदास कविराजने जो कुछ लिखा है, वह परम सत्य है। मेरे अनुग्रहसे वे मेरे अन्तःकरणकी सभी भावनाओंको जानते हैं। उनके वचनोंमें तनिक भी सन्देह

मत करना। काम-गायत्री मेरी और मेरे प्राणवल्लभकी उपासनाका मन्त्र है। हमलोग मन्त्राक्षरके द्वारा भक्तोंके निकट प्रकाशित होते हैं। मेरे अनुग्रहके बिना हम दोनोंको कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है। 'वर्णागम-भास्वत्' नामक ग्रन्थमें अर्द्धाक्षरका निरूपण किया गया है, उसे देखकर ही श्रील कृष्णदास कविराजने काम-गायत्रीका स्वरूप-निर्णय किया है। तुम इसे देखकर श्रद्धालुओंके उपकारके लिए प्रकाशित करो।"

स्वयं वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके इस आदेशका श्रवणकर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जग उठे और 'हा राधे! हा राधे!' कहकर विलाप करने लगे। फिर धैर्य धारणकर उनकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो गये। श्रीमती राधिकाने अर्द्धाक्षर निर्णय करनेके विषयमें जो इंगित दिया था, उसके अनुसार उक्त मन्त्रमें 'वि'के पूर्व जो 'य' है, वही अर्द्धाक्षर है। उसके अलावा अन्य सभी अक्षर पूर्णाक्षर या पूर्णचन्द्र हैं।

श्रीमती राधिकाजीकी कृपासे मन्त्रका अर्थ अवगत होकर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने अपने इष्टदेवका साक्षाद् दर्शन किया तथा सिद्धदेहके द्वारा नित्यलीलामें परिकरत्व प्राप्त किया। इसके पश्चात् उन्होंने राधाकुण्डके तट पर श्रीगोकुलानन्द नामक श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठाकी तथा वहीं रहते समय श्रीवृन्दावनकी नित्यलीलाओंका माधुर्य अनुभवकर श्रील कविकर्णपूर द्वारा रचित श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूकी सुखवर्त्तिनी नामक टीकाकी रचना की।

राधापरस्तीरकुटीरवर्त्तिनः प्राप्तव्यवृन्दावन चक्रवर्त्तिनः।
आनन्दचम्पू विवृतिप्रवर्त्तिनः सान्तो-गतिर्म्मे सुमहानिवर्त्तिनः॥

अपनी परिणत वयस (वृद्धावस्था)में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अन्तर्दशा और अर्द्धबाह्य दशामें रहकर भजन करनेमें ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। उनके प्रधान शिष्य श्रीबलदेव विद्याभूषण ही उनके स्थान पर शास्त्र-अध्यापनका कार्य करने लगे।

परकीयावादकी पुनर्स्थापना

श्रीधाम वृन्दावनमें षड्गोस्वामियोंका प्रभाव किञ्चित् क्षीण होने पर स्वकीया और परकीयावादका मतभेद उठ खड़ा हुआ। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वकीयावादके भ्रमको दूर करनेके लिए सुसिद्धान्तपूर्ण 'रागवर्त्मचन्द्रिका' तथा 'गोपीप्रेमामृत' नामक ग्रन्थोंकी रचनाएँ कीं। तत्पश्चात् उन्होंने उज्ज्वलनीलमणिके 'लघुत्वमत्र' (१/२१) श्लोककी आनन्दचन्द्रिका टीकामें शास्त्रीय प्रमाणों और अकाट्य युक्तियोंके द्वारा स्वकीयावादका खण्डन कर परकीया विचारकी स्थापना की है। श्रीमद्भागवतकी सारार्थदर्शिनी टीकामें भी उन्होंने परकीया भावकी पुष्टि की है।

ऐसा कहा जाता है कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीके समय कुछ पण्डितोंने परकीया उपासनाके विषयमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका विरोध किया था, किन्तु श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने अपनी प्रगाढ़ विद्वता तथा अकाट्य युक्तियोंके द्वारा उन्हें परास्त कर दिया। तब ईर्ष्यावशतः पण्डितोंने उन्हें जानसे मारनेका संकल्प किया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीवृन्दावन धामकी परिक्रमा करते थे। उन्होंने प्रभातकालीन अन्धकारमें श्रीधाम वृन्दावनकी परिक्रमा करते समय श्रील विश्वनाथ

चक्रवर्ती ठाकुरको किसी सघन अन्धकारपूर्ण कुञ्जमें जानसे मार डालनेकी योजना बनायी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके परिक्रमा करते-करते उक्त सघन कुञ्जके समीप पहुँचने पर वहाँ विरोधियोंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको मारना चाहा, किन्तु अकस्मात् देखा कि वे वहाँ नहीं थे। अपितु उनके स्थान पर एक सुन्दर व्रजबालिका अपनी दो-तीन सहेलियोंके साथ पुष्पचयन कर रही थी। ऐसा देखकर पण्डितोंने उस बालिकासे पूछा—"लाली! अभी-अभी एक महात्मा इधर आ रहे थे, वे किधर गये? क्या तुमने उनको देखा है?" बालिकाने उत्तर दिया—"देखा तो था, परन्तु किस ओर गये मुझे मालूम नहीं।" बालिकाके अद्भुत रूप-सौन्दर्य, कटाक्ष, भावभङ्गी और मन्द-मुस्कानको देखकर पण्डित समाज मुग्ध हो गया। उनके मनका सारा कल्मष दूर हो गया और उनका हृदय द्रवित हो गया। पण्डितोंके द्वारा परिचय पूछे जाने पर बालिकाने कहा, "मैं स्वामिनी श्रीमती राधिकाकी सहचरी हूँ। वे इस समय अपने ससुराल यावटमें विराजमान हैं। उन्होंने मुझे पुष्पचयन करनेके लिए भेजा है।" ऐसा कहते-कहते वे अन्तर्धान हो गयीं और फिर पण्डितोंने उस बालिकाके स्थान पर पुनः श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको देखा। पण्डितोंने श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की तथा श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने उन्हें क्षमा कर दिया। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके जीवनमें ऐसी बहुतसी आश्चर्यपूर्ण घटनाएँ सुनी जाती हैं। इस प्रकार इन्होंने स्वकीयावादका खण्डनकर शुद्ध परकीया विचारकी स्थापना की। इनका यह कार्य गौड़ीय-वैष्णवोंके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने जिस प्रकारसे श्रीगौड़ीय-वैष्णव धर्मकी मर्यादाकी रक्षा कर पुनः श्रीवृन्दावनमें श्रीगौड़ीय-वैष्णव धर्मका प्रभाव स्थापित किया है, उसका विवेचन करनेसे उनकी अलौकिक प्रतिभासे विस्मित होना पड़ता है। उनके इस असाधारण कार्यके लिए श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्योंने एक श्लोक लिखा है—

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्म प्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्त्वात् चक्रवर्त्त्याख्ययाभवत्॥

अर्थात् भक्तिपथके प्रदर्शक होनेके कारण वे विश्वके नाथ अर्थात् विश्वनाथ हैं तथा शुद्धभक्तचक्र (भक्तमण्डली)में सदा अवस्थित रहनेके कारण चक्रवर्ती हैं, अतएव उनका नाम विश्वनाथ चक्रवर्ती हुआ है।

वे लगभग १६७६ शकाब्दमें लगभग एक सौ वर्षकी आयुमें माघी शुक्ला पञ्चमी तिथिको अपनी अन्तर्दशाकी अवस्थामें श्रीवृन्दावनमें अप्रकट हुए। आज भी श्रीधामवृन्दावनमें श्रीगोकुलानन्द मन्दिरके निकट उनकी समाधि विराजमान है।

इन्होंने श्रील रूपगोस्वामीका पदाङ्क अनुसरण कर विपुल अप्राकृत भक्ति साहित्यका सृजनकर विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको स्थापन किया है। साथ ही इन्होंने श्रीरूपानुग विरुद्ध कुसिद्धान्तोंका खण्डन भी किया है। इस प्रकार गौड़ीय-वैष्णव जगतमें ये परमोज्ज्वल आचार्य तथा प्रामाणिक महाजनके रूपमें ही प्रपूजित हुए हैं। ये अप्राकृत महादार्शनिक, अप्राकृत कवि और अप्राकृत रसिकभक्त तीनों रूपोंमें ही विख्यात हैं। कृष्णदास नामक एक वैष्णव पदकर्त्ताने श्रील चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित माधुर्यकादम्बिनीके पद्यानुवादके उपसंहारमें लिखा है—

माधुर्यकादम्बिनी–ग्रन्थ जगत कैल धन्य
चक्रवर्ती–मुखे वक्ता आपनि श्रीकृष्णचैतन्य।
केह कहेन–चक्रवर्ती श्रीरूपेर अवतार।
कठिन ये तत्त्व सरल करिते प्रचार॥
ओहे गुणनिधि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती।
कि जानिव तोमार गुण मुञि मूढ़मति॥

अर्थात् श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने 'माधुर्यकादम्बिनी' ग्रन्थकी रचना कर समग्र जगतको धन्य कर दिया। वास्तवमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही इस ग्रन्थके वक्ता हैं, वे ही श्रील चक्रवर्तीके मुखसे बोल रहे हैं। कुछ लोगोंका कहना है श्रील चक्रवर्ती ठाकुर श्रील रूप गोस्वामीके अवतार हैं। वे अत्यन्त सुकठिन तत्त्वोंको सहज सरल रूपमें वर्णन करनेकी कलामें परम प्रवीण हैं। अहो! दयाके सागर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर! मैं अत्यन्त मूढ़ व्यक्ति हूँ। आप कृपा कर इन अप्राकृत गुणोंको मेरे हृदयमें स्फूर्ति करायें—आपके श्रीचरणोंमें ऐसी प्रार्थना है।

गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी भाँति अनेकानेक ग्रन्थोंके लेखक बहुत कम ही आविर्भूत हुए हैं। अभी भी साधारण वैष्णव समाजमें श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके तीन ग्रन्थोंके सम्बन्धमें एक प्रवाद सुप्रचलित है—'किरण-बिन्दु-कणा, एइ तीन निये वैष्णवपना।'

इन्होंने गौड़ीय-वैष्णव भक्ति-साहित्य-भण्डारकी अतुल-सम्पद्-स्वरूप जिन ग्रन्थों, टीकाओं और स्तवों आदिकी रचनाएँ की हैं, नीचे उनकी तालिका प्रस्तुत की जा रही है—

(१) व्रजरीतिचिन्तामणि, (२) श्रीचमत्कारचन्द्रिका, (३) श्रीप्रेमसम्पुटः (खण्डकाव्यम्), (४) गीतावली, (५) सुबोधिनी (अलङ्कार-कौस्तुभ टीका), (६) आनन्दचन्द्रिका (उज्ज्वल-नीलमणि टीका), (७) श्रीगोपाल-तापनी टीका, (८) स्तवामृतलहरी धृत—(क) श्रीगुरुतत्त्वाष्टकम्, (ख) मन्त्रदातृ-गुरोरष्टकम्, (ग) परमगुरोरष्टकम्, (घ) परात्परगुरोरष्टकम्, (ङ) परमपरात्पर गुरोरष्टकम्, (च) श्रीलोकनाथाष्टकम्, (छ) श्रीशचीनन्दनाष्टकम्, (ज) श्रीस्वरूप-चरितामृतम्, (झ) श्रीस्वप्नविलासामृतम्, (ञ) श्रीगोपालदेवाष्टकम्, (ट) श्रीमदनमोहनाष्टकम्, (ठ) श्रीगोविन्दाष्टकम्, (ड) श्रीगोपीनाथाष्टकम्, (ढ) श्रीगोकुलानन्दाष्टकम्, (ण) स्वयंभगवत्ताष्टकम्, (त) श्रीराधाकुण्डाष्टकम्, (थ) जगन्मोहनाष्टकम्, (द) अनुरागवल्ली, (ध) श्रीवृन्दादेव्याष्टकम्, (न) श्रीराधिका-ध्यानामृतम्, (प) श्रीरूपचिन्तामणिः, (फ) श्रीनन्दीश्वराष्टकम्, (ब) श्रीवृन्दावनाष्टकम्, (भ) श्रीगोवर्धनाष्टकम्, (म) श्रीसंकल्प-कल्पद्रुमः, (य) श्रीनिकुञ्जकेलिविरुदावली (विरुत्काव्य), (र) सुरतकथामृतम् (आर्यशतकम्), (ल) श्रीश्यामकुण्डाष्टकम्। (९) श्रीकृष्ण-भावनामृतम् महाकाव्यम्, (१०) श्रीभागवतामृत-कणा, (११) श्रीउज्ज्वल-नीलमणि-किरणः, (१२) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दुः, (१३) रागवर्त्म-चन्द्रिका, (१४) ऐश्वर्यकादम्बिनी (अप्राप्या), (१५) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी, (१६) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु टीका, (१७) श्रीआनन्दवृन्दावन-चम्पूः टीका, (१८) दानकेलिकौमुदी टीका, (१९) श्रीललितमाधव नाटक टीका, (२०) श्रीचैतन्यचरितामृत टीका (असम्पूर्ण), (२१) ब्रह्मसंहिता टीका,

(२२) श्रीमद्भगवद्गीताकी 'सारार्थवर्षिणी' टीका, (२३) श्रीमद्भागवतकी 'सारार्थदर्शिनी' टीका।

श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायैक-संरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा समितिके अन्तर्गत श्रीगौड़ीयमठोंके प्रतिष्ठाता आचार्य-केशरी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वरचित ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आदि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका बंगला भाषामें पुनः प्रकाशन किया है। उनकी हार्दिक अभिलाषा, उत्साहदान और अहैतुकी कृपासे आज राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें जैवधर्म, श्रीचैतन्य-शिक्षामृत, श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा, श्रीशिक्षाष्टक आदि ग्रन्थोंके हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हुए हैं तथा क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य मेरे परमपूज्य सतीर्थवर परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एक परम पराविद्यानुरागी एवं श्रीगुरुपादपद्मके अन्तरंग प्रिय सेवक हैं। वे मेरे प्रति अनुग्रहपूर्वक श्री श्रीलगुरुदेवके श्रीकरकमलोंमें उनके इस प्रिय 'श्रीभागवतामृतकणा' ग्रन्थको समर्पण कर उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करें—यही उनके श्रीचरणोंमें विनीत प्रार्थना है।

इन ग्रन्थकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने प्रूफ-संशोधन आदि विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी साहित्यरत्न, श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान सूर्यकान्त ब्रह्मचारी और श्रीमान अनङ्गमोहन ब्रह्मचारी आदि तथा आर्थिक सेवानुकूल्यके लिए श्रीमान् विनोदबिहारी दासाधिकारी और श्रीमान् सोमनाथ दासाधिकारीकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय एवं विशेष उल्लेखनीय

है। श्रीश्रीगुरु-गौरांग-गान्धर्विका-गिरिधारी इन पर प्रचुर कृपा आशीर्वाद करें, उनके चरणोंमें यही प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भगवान, भक्त और भक्ति तत्त्वके पिपासु, साधकजनोंमें इस ग्रन्थका समादर होगा और श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठकर श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधनमें प्रवेशाधिकार प्राप्त करेंगे।

अन्तमें भगवत्करुणाके घनविग्रह परमाराध्य श्री श्रीलगुरुपादपद्म हमारे प्रति प्रचुर कृपावारि वर्षण करें, जिससे हम उनकी मनोऽभीष्ट सेवामें अधिकाधिक अधिकार प्राप्त सकें—यही उनके श्रीकृष्णप्रेम प्रदानकारी श्रीचरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

अलमतिविस्तरेण।

अक्षय तृतीया
५०७ गौराब्द
(१११५ भारतीयाब्द)
२५ अप्रैल, १९९३ ई०

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपालेशप्रार्थी
दीनहीन
त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

द्वितीय संस्करणका सम्पादकीय वक्तव्य

यह बड़े हर्षका विषय है कि "श्रीभागवतामृतकणा"का प्रथम संस्करण वैष्णव समाजमें इतना लोकप्रिय हुआ कि कुछ ही समयमें सारी पुस्तकें वितरित हो गई। भारत और विदेशोंके हिन्दी भाषी श्रद्धालु इसकी अधिक रूपसे मांग करने लगे।

मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टरोत्तरशत श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी अभिलाषा थी कि गौड़ीय ग्रन्थोंका राष्ट्र भाषा हिन्दीमें प्रकाशन कर वैष्णव जगतवासियोंकी सेवाकी जाय। उसी कड़ीमें इस ग्रन्थके प्रकाशनको प्रचुर सफलता प्राप्त हुई और आज हम अपने पाठकोंको यह द्वितीय संस्करण प्रस्तुत कर हर्षित हो रहे हैं। बृहद् मृदंगकी सार्थकता इसी बातमें है कि प्रकाशित ग्रन्थोंके माध्यमसे हम आपके निकट पहुँच सकें।

प्रस्तुत संस्करणकी संशोधित प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, प्रूफ संशोधन एवं कम्प्यूटर टाइपिंग आदि विविध सेवा कार्योंके लिए श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी एम॰ए॰, एल॰–एल॰ बी॰, साहित्य रत्न, श्रीमान् कृष्णकृपा ब्रह्मचारी और श्रीमान् मधुमंगल ब्रह्मचारी आदिकी सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय एवं उल्लेखनीय है। श्रीश्रीगुरु–गौरांग–गन्धर्विका–गिरिधारी इन पर प्रचुर कृपाशीवाद वर्षण करें, मेरी यही प्रार्थना है।

श्रीमोक्षदा एकादशी तिथि
११ दिसम्बर, २००५ ई॰
५१९ श्रीचैतन्याब्द

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय-सूची

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीभागवतामृतकणा

श्रीमद्भागवतामृतनिर्णीतसर्वप्राधान्यो योऽनन्यापेक्षिमहैश्वर्य माधुर्यः स श्रीकृष्ण एव स्वयं रूपः॥१॥

अनुवाद—श्रीमद्भागवतामृत ग्रन्थमें जो प्रधान रूपमें निर्णीत हुए हैं, जिनके ऐश्वर्य (असमोर्ध्वत्व, अनन्तता, अद्भुत-प्रभुता) एवं माधुर्य (सर्वमनोहरता) अन्य किसी भी भगवत्-स्वरूपकी अपेक्षा न कर नित्य अवस्थित रहते हैं, वे कृष्ण ही स्वयंरूप परतत्त्व हैं॥१॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—

नमः ॐ विष्णुपादाय गौर प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव इति नामिने॥
अतिमर्त्त्य चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च पालिने।
जीव दुःखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने॥
विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्त्याख्ययाभवत्॥
वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानाम् पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥
श्रीचैतन्य मनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

सर्वप्रथम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी गुरुवर, श्रीरूपानुगगुरुवर्ग, श्रीश्रीगौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोदविहारी—इन सभीके चरणकमलोंमें पुनः पुनः प्रणामपूर्वक उनकी अहैतुकी कृपाशीर्वादकी प्रार्थना करते हुए, श्रीरूपानुगवर महामहोपाध्याय श्रीश्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा विरचित श्रीभागवतामृत–कणाका 'कणा–प्रकाशिका–वृत्ति' नामक भावानुवाद यह दीन–हीन अधम आरम्भ कर रहा है।

निखिल शाश्वत शास्त्रोंमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको परात्पर तत्त्वके रूपमें प्रतिपादित किया गया है। यहाँ हम कतिपय प्रमुख प्रमाणोंका उल्लेख कर रहे हैं—

ऐते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥
(श्रीमद्भा॰ १/३/२८)

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपब्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्ण ब्रह्म सनातनम्॥
(श्रीमद्भा॰ १०/१४/३२)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१)

"कृष्णो वै परमं दैवतम्"
(श्रीगोपालतापनी श्रुति—पू॰ वि॰ ३)

'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।'
'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो।'
'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्।'
'एकांशेन स्थितो जगत्।'
'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।'
'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।'
(श्रीमद्भगवद्गीता)

कृष्णेर स्वरूप विचार सुन, सनातन।
अद्वयज्ञान–तत्त्व, ब्रजे ब्रजेन्द्रनन्दन॥
सर्व आदि, सर्व–अंशी, किशोर–शेखर।
चिदानन्द–देह, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर॥
स्वयं भगवान् कृष्ण, 'गोविन्द' पर नाम।
सर्वैश्वर्यपूर्ण याँर गोलोक—नित्यधाम॥
(चै०च०म० २०/१५२–१५५)

इस प्रकार निखिल श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों एवं तदनुगत अन्यान्य शास्त्रोंके गूढ़ तात्पर्यका विवेचन करने पर श्रीकृष्ण ही परात्परतत्त्व निर्णीत होते हैं। परमतत्त्व होनेका कारण कृष्णकी स्वयं भगवत्ता ही है। स्वयं भगवत्ता या स्वयंरूपकी परिभाषा श्रील रूपगोस्वामीने लघुभागवतामृत नामक ग्रन्थमें दी है—"अनन्यापेक्षि यद्रूपं स्वयंरूपः स उच्यते।" (ल०भा० पू०ख० १३) अर्थात् भगवान्का वह मूलरूप जो किसी भी अन्य भगवद्रूपकी अपेक्षा नहीं रखता तथा स्वतःसिद्ध होता है, उसको स्वयंरूप कहते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है कि—

यॉँर भगवत्ता हैते अन्येर भगवत्ता।
स्वयं भगवान शब्देर ताहातेई सत्ता॥
(चै॰च॰आ॰ २/८८)

अर्थात् जिनकी भगवत्तासे दूसरोंकी भगवत्ता सिद्ध होती है, उन्हें 'स्वयं भगवान्' कहते हैं। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं माधुर्यकी शेष सीमा हैं। उनका महान ऐश्वर्य एवं माधुर्य किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखता। इसी स्वयं भगवान्से ही समस्त प्रकारके भगवत्-स्वरूपोंका प्रकाश होता है। श्रीकृष्णने नर-लीलाका अतिक्रम कर विभिन्न समयोंमें जो ईश्वरत्वरूप, अलौकिक लीलाओंका प्रकाश किया है, वही उनका ऐश्वर्य है। जैसे—आविर्भावके समय चतुर्भुजरूप प्रकाश, असुरोंका वध, अर्जुनको विराट् रूप दिखलाना आदि। ऐश्वर्यके प्रकाश अथवा अप्रकाश दोनों ही अवस्थाओंमें नरलीलाका अतिक्रम नहीं करना, उनका माधुर्य है। जैसे—पूतना, शकटासुर, अघासुर आदिके वध अथवा दामबन्धन लीला आदि में ऐश्वर्य प्रकाशित होने पर भी नरलीलाका अतिक्रम नहीं हुआ। पुनः मक्खन चोरी, दधि-लूट, गोपललना-लाम्पट्य लीला, मिट्टी खानेकी लीला आदिमें किसी प्रकारसे ऐश्वर्यको न दिखलाकर, भय आदिके प्रकाशमें ही नरलीलाका माधुर्य प्रकाशित हुआ है। इसलिए श्रीकृष्णकी जितनी भी क्रीड़ाएँ हैं, वे सर्वोत्तम नरलीलाके श्रेष्ठ निदर्शन-स्वरूप हैं। नर-स्वरूप ही उनका स्वरूप है—

कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला।
नरवपु तांहार स्वरूप॥
(चै॰च॰म॰ २१/१०१)

ब्रजकी रागानुगा भक्तिकी उपासना करनेसे श्रीकृष्णके इस स्वयंरूप परमतत्त्वकी उपलब्धि होती है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके त्रिविध रूप है—(१) स्वयंरूप, (२) तदेकात्मरूप और (३) आवेश। इनमेंसे व्रजविहारी नन्दनन्दन श्रीकृष्णरूप गोपमूर्त्ति ही 'स्वयंरूप' है। इनमें चार विशेष गुण हैं, जो अन्य किसी भी स्वरूपमें नहीं होते—रूपमाधुरी, गुणमाधुरी, लीलामाधुरी और वेणुमाधुरी। स्वयंरूप भी दो प्रकारका होता है—स्वयंरूप और स्वयंप्रकाश। स्वयंप्रकाश—एक ही स्वयंरूप यदि युगपत् बहुतसे स्थानोंमें प्रकटित हो और यदि प्रकटित सभी मूर्त्तियाँ रूप, गुण और लीला आदिमें सब प्रकारसे मूलरूपके समान हों, तो उन्हें मूलरूपका या स्वयंरूपका प्रकाश कहा जाता है। जैसे—रासके समय और महिषियोंके विवाहमें एक ही कृष्ण अनेकों मूर्त्तियोंमें प्रकाशित हुए थे। श्रीरूपगोस्वामीने लघुभागवतामृतमें स्वयंप्रकाशकी परिभाषामें इस प्रकार उल्लेख किया है—

अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य यैकदा।
सर्व्वथा तत्-स्वरूपैव स प्रकाश इतीर्य्यते॥

स्वयंप्रकाश दो प्रकारका होता है—प्राभव और वैभव। प्राभवमें 'प्रभुत्व' एवं वैभवमें 'विभुत्व' वर्त्तमान रहता है। स्वयंरूप कृष्णके प्राभव प्रकाशमें सभी मूर्त्तियाँ स्वयंरूप कृष्ण ही हैं। जब वही कृष्ण भाव, वेश, आकार, वर्ण आदि कुछ भिन्नरूपमें प्रकाशित होने पर, उन्हें 'वैभव-प्रकाश' कहते हैं। श्रीबलदेव प्रभु कृष्णके वैभव-प्रकाश हैं। श्रीकृष्णसे अभिन्न होने पर भी नाम, गौर-रंग, हल-मूषलधारी आदिका कुछ-कुछ भेद है। विशेष प्रयोजनके लिए विशेष प्रकाश-मूर्त्तियोंका

शास्त्रोंमें उल्लेख पाया जाता है और उनमें आकारगत भेद भी लक्षित होता है। जैसे–चतुर्भुज देवकीनन्दन। यहाँ आकारगत कुछ भिन्नता होने पर भी उन्हें स्वयंरूप कृष्णका प्रकाश ही जानना चाहिए। वासुदेवकृष्णकी द्विभुज मूर्त्तिको भी प्रकाश समझना चाहिए। तदेकात्मरूप और आवेशका वर्णन आगे प्रसंगानुसार किया जायेगा॥१॥

तस्य प्रायस्तुल्यशक्तिधारी यः स तस्य विलासः; यथावैकुण्ठनाथः। तस्मान्न्यूनशक्तिधारी यः स तस्यांशः; यथा मत्स्यकूर्म्मादिकः॥२॥

अनुवाद—जो स्वयंरूपके प्रायः बराबर शक्ति–सम्पन्न होते हैं, उन्हें स्ययंरूप कृष्णका विलास कहा जाता है। जैसे—परव्योमनाथ श्रीनारायण। उक्त विलाससे जो न्यून (कम) शक्तिवाले हैं, उनको उस विलासका स्वांश कहा जाता है। जैसे—मत्स्य, कूर्मादि अवतार॥२॥

कणा–प्रकाशिका–वृत्ति—जो रूप स्वयंरूपसे भिन्न नहीं है, उनको स्वयंरूपका ही 'कायव्यूह' कहा जाता है। अथच जिनमें आकार, भाव, वर्ण, नाम आदिकी दृष्टिसे कुछ–कुछ भेद दृष्टिगोचर होता है, तब ऐसे रूपको तदेकात्म रूप कहते हैं। श्रीरूपगोस्वामीने लघुभागवतामृतके पूर्वखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

"यद्रुपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते।
आकृत्यादिभिरन्यादृक् स तदेकात्मरूपकः॥"

तदेकात्मरूप दो प्रकारके होते हैं—विलास और स्वांश। उनमेंसे मूलरूपके समान शक्तिधारी, किन्तु आकृति, वर्ण, नाममें कुछ भेद होने पर उन्हें तदेकात्मरूपका विलास कहते हैं। जैसे व्रजमें बलराम एवं वैकुण्ठमें श्रीनारायण। श्रील रूपगोस्वामीपाद ने लघुभागवतामृतमें ऐसा उल्लेख किया है—

स्वरूपमन्याकारं यत्तस्य भाति विलासतः।
प्रायेणात्मसमं शक्त्या स विलासो निगद्यते॥

'प्राभव और वैभव' भेदसे विलास भी दो प्रकारके होते हैं। प्राभव विलासमें द्वारका-मथुरा धाममें आदि-चतुर्व्यूह होते हैं। यथा (१) वासुदेव—"चतुर्भुज क्षत्रियवेश क्षत्रिय अभिमान, द्वारका-मथुरामें नित्य अधिष्ठान।" (२) संकर्षण, (३) प्रद्युम्न और (४) अनिरुद्ध। वैभवविलास वैकुण्ठमें (नित्य विराजमान) द्वितीय चतुर्व्यूह है। इसमें से प्रत्येक चारोंकी तीन-तीन मूर्त्तियाँ अर्थात् द्वादश मूर्त्तियाँ, द्वादश-मासों और द्वादश-तिलकोंके अधिष्ठातृ देवता स्वरूप हैं। पुनः इनमें से प्रत्येककी पुरुषोत्तम, अच्युत आदि आठ-आठ विलास-मूर्त्तियाँ होती हैं। विस्तृत वर्णन हेतु श्रीचैतन्य-चरितामृत द्रष्टव्य है। विलाससे कुछ अल्पशक्तिवाले भगवद्-स्वरूपोंको स्वांश कहा जाता है। स्वांश छह प्रकारके होते हैं—(१) पुरुषावतार, (२) गुणावतार, (३) लीलावतार, (४) युगावतार, (५) मन्वन्तरावतार और (६) शक्त्यावेशावतार॥२॥

यत्रैकैकशक्ति सञ्चारमात्रं स आवेशः, यथा व्यासादयः॥३॥

अनुवाद—भगवान्की ज्ञान, भक्ति और क्रियादि शक्तियोंमें से किसी एक शक्तिका सञ्चार जिस जीवमें होता है, उसे आवेशावतार कहते हैं और उस शक्ति-संचारको आवेश कहते हैं। जैसे—व्यासदेवमें 'भक्तिशक्ति', पृथु-महाराजमें 'पालनशक्ति' और सनकादिमें 'ज्ञानशक्ति'का संञ्चार॥३॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—जिसमें केवल एक शक्तिका संचार होता है, उसीको आवेश कहते हैं। आवेश दो प्रकारका होता है—भगवदावेश और भगवद्-शक्त्यावेश। महत्तम जीवोंमें ही ऐसे आवेश होते हैं। 'भगवद् आवेशमें' जीवको अपने

श्रीभगवान् होनेका अभिमान रहता है। जैसे—कपिलदेव, ऋषभदेव आदि अपनेको भगवान् मानते हैं। किन्तु भगवद्शक्त्याविष्ट जीव अपनेको भगवद्दास समझते हैं। जैसे—ब्रह्मा, नारद, व्यास, पृथुमहाराज, परशुराम आदि। श्रीलघुभागवतामृतमें ऐसा ही कहा गया हैं—

ज्ञानशक्त्यादि कलया यत्राविष्टो जनार्द्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥

अर्थात् ज्ञान, शक्ति, आदि कलाके द्वारा श्रीजनार्दन जिन महत्तमजीवोंमें आविष्ट होते हैं, उन्हें शक्त्यावेश कहा जाता है। ये शक्त्यावेश भी मुख्य और गौण भेदसे दो प्रकारके होते हैं। जिनमें साक्षात्-शक्तिका आवेश होता है, वे मुख्य-शक्त्यावेश अवतार कहलाते हैं और जिनमें शक्तिका आभासमात्र विभूतिके रूपमें दृष्टिगोचर होता है, उसे गौण शक्त्यावेशावतार कहते हैं॥३॥

अथावतारस्त्रिविधाः। पुरूषावतारा–गुणावतारा–लीलावतारा श्च॥४॥

अनुवाद—अनन्तर अवतारसमूह मुख्यरूपसे तीन प्रकारके होते हैं—पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार॥४॥

कणा–प्रकाशिका–वृत्ति—प्रापञ्चिक जीवोंके कल्याणके लिए प्रपञ्चातीत धामसे इस जगतमें श्रीभगवान्के अवतरित होनेका नाम 'अवतार' है। लघुभागवतामृतकी टीकामें श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने ऐसा उल्लेख किया है—"अप्रपञ्चात् प्रपञ्चेऽवतरणं खल्ववतारः।" श्रीकृष्णसन्दर्भमें भी ऐसा कहा गया है—"अवतारश्च प्राकृतवैभवेऽवतरणमिति" अर्थात् श्रीभगवान्के स्वरूप-वैभवोंका माया-वैभवमें अवतरणको अवतार

कहते हैं। परम–परात्पर–तत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण जीवोंके कल्याणके लिए कभी स्वयं द्वारान्तरके द्वारा नवीन रूपमें जगतमें आविर्भूत होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति" श्लोकमें अवतारका कारण बतलाया गया है।

कालके प्रभावसे आजकल अधिकांश व्यक्ति नास्तिक स्वभावके हैं। वे लोग युक्ति–तर्कके द्वारा भगवान्को जानना चाहते हैं। उपासना–पद्धतिके द्वारा भगवान् स्वयं अपनेको अनुभव करा देते हैं, इसे वह स्वीकार नहीं करते। वे केवल लौकिक चेष्टाके द्वारा आंखोंसे ही अथवा अन्यान्य इन्द्रियोंके द्वारा तत्क्षण ही भगवत्तत्त्वको उपलब्ध करना चाहते हैं। किन्तु यह असम्भव है। भगवान् अवाङ्मनसोगोचर हैं, वे स्वयं कृपा करके ही योग्य जीवोंको दर्शन देते हैं। वे स्वयं प्रकाश तत्त्व हैं। जिस प्रकार लाखों प्रयत्न करने पर भी रातमें सूर्यको नहीं देखा जा सकता, प्रातः कालमें ही सूर्यकी किरणोंसे ही सूर्यको बिना प्रयासके ही देखा जा सकता है। उसी प्रकार मायाबद्ध जीव स्वरूपशक्तिकी भक्ति वृत्तिका आश्रय किये बिना भगवद्दर्शन कदापि नहीं कर सकता। करुणावरुणालय भगवान्को भूलकर जीव इस मायिक संसारमें अनादिकालसे विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करता हुआ, त्रितापोंसे दग्ध हो रहा है। इन जीवों पर कृपा करनेके लिए ही अपनी स्वरूपशक्तिके द्वारा श्रीभगवान् मनुष्य, देव, मत्स्य, कूर्म आदिके रूपमें प्रापञ्चिक जगतमें अवतीर्ण होते हैं। गीतामें जगह–जगह श्रीकृष्णने इन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। इन भगवद् अवतारोंकी अवज्ञा करनेवालोंको मूढ़, अज्ञानी और असुरादि "अवजानन्ति मां मूढ़ा" कहा गया है

तथा वे आसुरी एवं राक्षसी गतिको प्राप्त होते हैं—“राक्षसीमासुरीञ्चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः” स्पष्टरूपसे कहा गया है।

अवतारके समय सिद्ध और साधकोंका सङ्ग होता है और वह सङ्ग ही साधकोंकी सिद्धि प्राप्तिका एकमात्र परम उपाय है। ये अवतारसमूह मुख्यरूपसे तीन प्रकारके होते हैं—पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार॥४॥

तत्र यः प्रथमपुरुषो महत्तत्त्वस्य स्त्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृत्यन्तर्यामी सः संकर्षणांशः। द्वितीयपुरुषो यो गर्भोदशायी समष्टिविराड़ान्तर्यामी ब्रह्मणः स्त्रष्टा स प्रद्युम्नांश। तृतीयपुरुषो यःक्षीरोदशायी व्यष्टि विराड़ान्तर्यामी सोऽनिरुद्धांशः॥५॥

अनुवाद—पुरुषावतार प्रथमपुरुष, द्वितीयपुरुष और तृतीयपुरुष—तीन प्रकारके होते हैं। उनमेंसे महत्तत्त्वके स्त्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृतिके अन्तर्यामी प्रथम पुरुष हैं। ये परव्योम-स्वरूप वैकुण्ठ धामके संकर्षणके अंश हैं। जो समष्टि विराट् अन्तर्यामी गर्भोदकशायी हैं और जो ब्रह्माके स्त्रष्टा हैं, वे वैकुण्ठस्थ प्रद्युम्नके अंश द्वितीय पुरुष हैं। जो व्यष्टि विराट् अन्तर्यामी क्षीरोदकशायी हैं, वे परव्योम-स्थित अनिरुद्धके अंश तृतीय पुरुष हैं॥५॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—

(१) प्रथम् पुरुषावतार—प्रकृतिके अन्तर्यामी तथा महत्तत्त्वके स्त्रष्टा कारणार्णवशायी महाविष्णु परम-पुरुषावतार हैं। ये वैकुण्ठपति नारायणके द्वितीय-व्यूह संकर्षणके अंश हैं। ये कारण-वारिमें शयन करते हैं। वे अपने ईक्षण (इच्छासे या कटाक्षसे) प्रकृतिको क्षुब्धकर महत्तत्त्वादिके द्वारा इस चराचर

विश्वकी सृष्टि करते हैं। "स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः" (श्रीमद्भा॰ २/६/३९), "आद्योऽवतारः पुरुषः" (श्रीमद्भा॰ १/६/३४) तथा "आधार-शक्ति-मवलम्व्य परां स्वमूर्तिं गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि" (श्रीब्रह्मसंहिता) अर्थात् आधारशक्तिमयी शेष नामक अपनी मूर्त्तिका अवलम्बन कर जो अपने रोमकूपमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके साथ कारणर्णवमें शयनपूर्वक योगनिद्राका सम्भोग करते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। ये महाविष्णु जिस अनन्त शय्या पर शयन करते हैं, वे अनन्तदेव दासतत्त्वरूप शेष नाम अवतार हैं।

श्रीब्रह्मसंहितामें इनके सम्बन्धमें और भी कहा है—

नारायणः स भगवानापस्तस्मात् सनातनात्।
आविरासीत् कारणार्णो-निधिः संकर्षनात्मकः।
योगनिद्रां गतस्तस्मिन् सहस्रांशः स्वयं महान्॥
तद्रोमबिल-जालेषु बीजं संकर्षणस्य च।
हैमान्यण्डानि जातानि महाभूतावृतानि तु॥

(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१२-१३)

अर्थात् स्वरूपानन्द रूप आनन्द-समाधि ही योगनिद्रा है। श्रीरमादेवी ही योगमाया रूपा योगनिद्रा हैं। कारणार्णवशायी महाविष्णु इस योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। उनके एक-एक रोमकूपमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-बीज उत्पन्न होते हैं। वे ब्रह्माण्ड-बीज उनके चिन्मय शरीरगत रोमकूपमें जब तक अवस्थित रहते हैं, तब तक वे चिदाभासरूप स्वर्णाण्डकी भाँति रहते हैं। उन महाविष्णुके निःश्वासके साथ बाहर निकलकर मायाके असीम प्रकोष्ठमें प्रवेश करते हैं। तब अप्रपञ्चीकृत-भूत समूहके द्वारा परिवर्द्धित होते हैं।

(२) द्वितीय पुरुषावतार—सूक्ष्म समष्टि विराट्के अन्तर्यामी, ब्रह्माके सृष्टिकर्ता, गर्भोदकशायी महाविष्णु ही द्वितीय पुरुषावतार है। ये वैकुण्ठधाम स्थित द्वितीय चतुर्व्यूहके तृतीय व्यूहरूप प्रद्युम्नके अंश हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसा उल्लेख है—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजाम्पतिः॥
यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः।
तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमुर्जितम्॥
पश्यन्त्यदोरूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरूभुजाननाद्भुतम्।
सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्याम्बर कुण्डलोल्लसत्॥

अर्थात् उक्त प्रथम पुरुष भी अनन्त रूपोंमें उपरोक्त सम्वर्द्धित अनन्त ब्रह्माण्डोंमें प्रवेश करते हैं। वे प्रविष्ट रूप ही द्वितीय पुरुषावतार गर्भोदकशायी विष्णु हैं। ये गर्भोदकमें शयनपूर्वक योगनिद्राका आश्रय करते हैं। उस समय इनके नाभिह्रदसे उत्पन्न पद्मसे विश्वस्रष्टा प्रजापति (ब्रह्मा) जन्म ग्रहण करते हैं। कारणोदकशायी महाविष्णुके श्रीचरण आदिसे लेकर मस्तक तक अङ्गोंके रूपमें पातालके देशसे आरम्भकर ब्रह्मलोक तक विराट् प्रपञ्चरूप चौदह भुवन परिकल्पित हैं। गर्भोदकशायी विष्णुका श्रीविग्रह रज, तम रहित विशुद्ध सत्त्व है अर्थात् अप्राकृत होता है। योगीलोग विशेष विज्ञान चक्षुके द्वारा असंख्य हस्त, पद, मुख, सिर, कर्ण, चक्षु, नासिका, मस्तक, दिव्य अलंकार एवं मुकुटादिसे सुशोभित उनके श्रीअङ्गका दर्शन करते हैं। ब्रह्मसंहितामें भी कहा गया है—

प्रत्यण्डमेवमेकांशाद्विशति स्वयम्।
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा महाविष्णुः सनातनः॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१४)

अर्थात् कारणाब्धिमें शयन किये हुए महाविष्णु महासंकर्षणके अंश हैं, उनसे जितने भी ब्रह्माण्ड प्रकाशित हुए, उन सभी ब्रह्माण्डोंमें स्वयं अंशके रूपमें प्रविष्ट हुए। उनका यह प्रत्येक अंश ही गर्भोदकशायी पुरुष है। वे सर्वप्रकारसे महाविष्णुके समान होते हैं। ये समष्टि अन्तर्यामी भी कहलाते हैं। ब्रह्मसंहितामें फिर कहते हैं—

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्व्य
जीवन्ति लोमविलोजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं, तमहं भजामि॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/४८)

अर्थात् महाविष्णुका एक निःश्वास निकलकर जितने समय तक अवस्थित रहता है, उनके रोमकूपोंसे उत्पन्न ब्रह्माण्डपति ब्रह्मा आदि उतने ही काल तक जीवित रहते हैं। वे महाविष्णु भी जिनके अंशोंके अंश-कला मात्र हैं, उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

(३) तृतीय पुरुषावतार—द्वितीय पुरुष गर्भोदकशायीके अंश, प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी-साक्षी, उनके कर्मोंके नियन्ता, क्षीरोदकशायी परमात्मा ही तृतीय पुरुषावतार हैं। ये वैकुण्ठ-स्थित द्वितीय चतुर्व्यूहरूप अनिरुद्धके अंश हैं। श्रीमद्भागवतमें इनका इस प्रकार वर्णन है—

"केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।" (२/२/८)

अर्थात् जीवोंके हृदयमें अन्तर्यामी-स्वरूप अंगुष्ठ परिमाण प्रादेशमात्र पुरुष विराजमान रहते हैं। कठोपनिषद्में भी अंगुष्ठमात्र पुरुषका वर्णन मिलता है—

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
(कठोपनिषद २/१/१२)

श्रीब्रह्मसंहितामें भी मिलता है—

वामांगादसृजद् विष्णुं दक्षिणांगात् प्रजापतिम्।
ज्योतिर्लिंगमयं शम्भुं कूर्च्चदेशादवासृजत्॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/१५)

अर्थात् व्यष्टि-अन्तर्यामी क्षीरोदकशायी पुरुष ही श्रीविष्णु कहलाते हैं। हिरण्यगर्भ रूप भगवद् अंश ही प्रजापति हैं। ये चतुर्मुख ब्रह्मासे भिन्न हैं। ये हिरण्यगर्भ ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके प्रत्येक ब्रह्माके बीजतत्त्व हैं। ज्योतिर्लिंगमय शम्भु अपने मूलतत्त्व आदिलिंग स्वरूप शम्भुके प्रकाशमात्र हैं। विष्णु महाविष्णुके स्वांशतत्त्व हैं, अतएव महामहेश्वर हैं। प्रजापति ब्रह्मा एवं शम्भु महाविष्णुके विभिन्नांश हैं, अतएव आधिकारिक देवता विशेष हैं। अपनी शक्ति बायें भागमें रहती है, इसलिए महाविष्णुकी चिच्छक्तिके शुद्धसत्त्वसे वाम अङ्गमें विष्णुका आविर्भाव होता है। विष्णु ही ईश्वरके रूपमें प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वेदमें उनको ही अंगुष्ठमात्र पुरुष बतलाया गया है। वे ही पालनकर्त्ता हैं। कर्मीजन उनको ही 'यज्ञेश्वर नारायण' मानकर पूजा करते हैं तथा योगीलोग उन्हें ही परमात्मा मानकर समाधिमें दर्शन करनेकी अभिलाषा रखते हैं। श्रीब्रह्मसंहितामें और भी कहा गया है—

दीपार्च्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्म्मा ।

यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/४६)

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने इस श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार बतलाया है—"परव्योमपति नारायण श्रीकृष्णकी विलासमूर्त्ति हैं, उनके अंश प्रथमपरुष हैं, उनके भी अंश गर्भोदकशायी हैं तथा गर्भोदकशायीके अंश क्षीरोदकशायी विष्ण हैं। विष्णु शब्दका अर्थ व्याप्नोति इति विष्णु अर्थात् जो सर्वव्यापी हैं। इस तरह क्षीरोदकशायी विष्णु भी स्वांश-विलास निरूपित होते हैं। सत्त्व-गुणावतार विष्णुतत्त्व मायिकगुणामिश्र शम्भुतत्त्वसे विलक्षण होते हैं। गोविन्दके स्वरूपके समान ही विष्णुका स्वरूप होता है। दोनों ही विशुद्ध-सत्त्व-स्वरूप हैं अर्थात् दोनों समान धर्मविशिष्ट हैं। यहाँ निवृत हेतुका तात्पर्य आविर्भूत होनेसे है। त्रिगुणमयी मायामें जो सत्त्वगुण होता है, वह रज और तम गुणोंसे मिश्रित रहनेके कारण अशुद्ध सत्त्व होता है। ब्रह्मा—रजोगुणसे उत्पन्न स्वांश प्रभाव-विशिष्ट विभिन्नांश तत्त्व हैं और शम्भु—मायाके तमोगुणसे उदित, स्वांश प्रभाव विशिष्ट विभिन्नांश तत्त्व हैं। विभिन्नांश होनेका कारण यह है कि मायाके रज और तम—ये दोनों ही गुण अचित् होनेके कारण उससे उदित उक्त दोनों तत्त्व (ब्रह्मा और शम्भु) स्वयंरूप या तदेकात्म रूपसे बहुत दूर अवस्थित हैं। किन्तु विष्णु विशुद्ध सत्त्वके अंश अर्थात् स्वांश हैं। इसलिए ये स्वांश-विलास और महामहेश्वर तत्त्व हैं। वे मायायुक्त नहीं हैं, मायाके प्रभु हैं। श्रीगोविन्दकी विलासमूर्त्ति नारायणमें श्रीगोविन्दके समस्त ऐश्वर्य अर्थात् साठ गुण पूर्ण

रूपसे हैं, किन्तु ब्रह्मा और शिव माया–गुण–मिश्रतत्व हैं और वे गुणावतार होने पर भी विष्णुतत्त्वके समान नहीं हैं। विष्णुमें उक्त साठ गुण होते हैं, किन्तु ब्रह्मा और शम्भुमें केवल पचपन गुण ही बिन्दु–बिन्दु रूपमें होते हैं। विष्णु ईश्वर हैं; ब्रह्मा और शिव विष्णुके अधीन आधिकारिक देवता तत्त्व–स्वरूप हैं॥५॥

अथ गुणावताराः। सत्त्वगुणेन विष्णुः पालनकर्त्ता क्षीरोदनाथ एव। रजोगुणेन ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता गर्भोदशायिनाभिपद्मोद्भवः। क्वचित् कल्पे तादृशपुण्यकारी जीव एव ब्रह्मा। तदा तत्र ईश्वरस्य शक्तिसंचारेणावेशावतार एव। तदा तस्य रजोगुणयोगाद्विष्णुना न साम्यम्। क्वचित् कल्पे स्वयमेव विष्णु ब्रह्मा भवति, यथा कदाचित् स्वयमेव इन्द्रो यज्ञः। तदा तस्य साम्यमेव। पातालादिसत्यलोकान्तसमष्टि विराट् स्थूलो ब्रह्मण एव विग्रहः प्राकृतः सोऽपि ब्रह्मा। तस्य जीवः सूक्ष्मो हिरण्यगर्भः सोऽपि ब्रह्मा। तस्यान्तर्य्यामी गर्भोदशायीश्वर एव। अथ तमोगुणेन शिवः संहारकर्त्ता; स्थूलवैराजसंज्ञः सूक्ष्महिरण्यगर्भसंज्ञः सृष्टिकर्त्ता पद्मोद्भवः ईश्वरः एव, क्वचित् कल्पे जीवश्च, क्वचित् कल्पे स्वयं विष्णुरपि। किञ्च सदाशिवः स्वयंरूपांगविशेष–स्वरूपो निर्गुणः सः शिवस्यांशी। अतएवास्य ब्रह्मतोऽप्याधिक्यं विष्णुना साम्यञ्च जीवात्तु सगुणत्वेऽसाम्यञ्च॥६॥

अनुवाद—सत्त्वगुणके द्वारा जगत्के पालनकर्त्ता क्षीरोदकनाथ ही 'विष्णु' कहलाते हैं। गर्भोदकशायीके नाभिपद्मसे उत्पन्न रजोगुणके द्वारा स्थूल जगतके सृष्टिकर्त्ता 'ब्रह्मा' कहलाते हैं। किसी–किसी कल्पमें प्रचुर पुण्यवान् जीव ब्रह्मा रूपसे जगत्की सृष्टि करते हैं। वर्त्तमान कल्पमें वैसे ही जीवमें ईश्वरकी शक्ति सञ्चारित हुई है, इसलिए इन ब्रह्माको भी

'आवेशावतार' कहा जाता है। इन ब्रह्मामें रजोगुणका संयोग रहनेके कारण ये श्रीविष्णुके समतुल्य तत्त्व नहीं है। किसी कल्पमें वैसे पुण्यशाली जीवके अभावमें श्रीविष्णु स्वयं ब्रह्मा होकर जगत-सृजन आदिका कार्य करते हैं। जैसे किसी-किसी मन्वन्तरमें श्रीभगवद् अवतार 'यज्ञ' ही इन्द्रके रूपमें प्रकट होते हैं। जिस मन्वन्तरमें भगवान् यज्ञ ही इन्द्र होते हैं तथा जिस कल्पमें विष्णु ही ब्रह्मा होते हैं, उस मन्वन्तर और कल्पके इन्द्र और ब्रह्मा विष्णुके समतुल्य होते हैं। पातालसे सत्यलोक पर्यन्त स्थूल समष्टि विराट्रूप प्राकृत निखिल पदार्थ ही ब्रह्माका स्थूल शरीर है—उसे भी ब्रह्मा कहा जाता है। और उस स्थूल शरीरमें जो सूक्ष्म जीवरूप हिरण्यगर्भ हैं, वे भी ब्रह्मा हैं। तदन्तर्यामी (ब्रह्माके अन्तर्यामी) गर्भोदकशायी है। वे ईश्वरतत्त्व हैं। अनन्तर तमोगुणके द्वारा जो संहारकर्त्ता हैं, वे शिव हैं। जिनको स्थूल वैराज-पुरुष, सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, गर्भोदकशायीके नाभिकमलसे उत्पन्न सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कोटि ब्रह्मा कहा गया है, वे ही शिव रूप धारण कर संहार कार्य करते हैं। किसी कल्पमें वैसा पुण्यवान् जीव ही और वैसे जीवके अभावमें किसी-किसी कल्पमें विष्णु भी शिव रूप धारण करते हैं; किन्तु सदाशिव निर्गुणतत्त्व हैं। तथा वे स्वयंरूपके विलास-विशेष हैं। वे गुणावतार शिवके भी अंशी हैं, अतएव ये ब्रह्मासे श्रेष्ठ हैं, विष्णुके समान हैं एवं जीवतत्त्वसे भी भिन्न-स्वरूप हैं, क्योंकि जीव सगुण होते हैं॥६॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—

(१) श्रीविष्णुः—पूर्वोक्त तृतीय पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु सत्त्वगुणके द्वारा जगत्का पालन करते हैं। वे ही यहाँ

गुणावतार विष्णु कहे गये हैं। इनके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्व्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत्॥
(श्रीमद्भा॰ १०/८८/५)

अर्थात् श्रीहरि सर्वज्ञ, प्रकृतिसे अतीत, सबके साक्षी, गुणातीत पुरुषोत्तम कहे जाते हैं, उनकी आराधना करनेवाले भक्तजन भी गुणतीत होते हैं। इसके सम्बन्धमें पूर्वोक्त ब्रह्मसंहिताके 'दीपार्च्चिरेवहि' श्लोककी कणा प्रकाशिका वृत्ति द्रष्टव्य है।

(२) ब्रह्मा—श्रीगर्भोदकशायी विष्णुके नाभिकमलसे आविर्भूत, रजोगुण द्वारा सृष्टिकर्त्ता ही ब्रह्मा हैं। ये रजोगुणसे उत्पन्न, स्वांश प्रभाव विशिष्ट, विभिन्नांशतत्त्व हैं। ब्रह्माजीके सम्बन्धमें इससे पहले श्लोककी कणा प्रकाशिका वृत्ति द्रष्टव्य है। श्रीरूपगोस्वामीने भी लघुभागवतामृत ग्रन्थमें कहा है—

हिरण्यगर्भः सूक्ष्मोऽत्र स्थूलो वैराजसंज्ञकः।
भोगाय सृष्टये चाभूत् पद्मभूरिति स द्विधा॥

अर्थात् ब्रह्माके स्थूलरूपको 'वैराज' और सूक्ष्मरूपको 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। वैराज ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं तथा हिरण्यगर्भ ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यके भोक्ता हैं। पातालसे लेकर सत्यलोक तक चतुर्दश भुवनमें समष्टि विराट् रूप प्राकृत-पदार्थ-समूह ब्रह्माका स्थूल शरीर है। उसे भी ब्रह्मा कहा जाता है। इस स्थूल शरीरमें सूक्ष्म जीवरूप हिरण्यगर्भको भी ब्रह्मा कहा जाता है। उनके अन्तर्यामी गर्भोदकशायी

महाविष्णु हैं। श्रीब्रह्मसंहितामें भी ब्रह्माके सम्बन्धमें पाया जाता है—

भास्वान् यथाश्मसकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्त्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/४९)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस शलोकका तात्पर्य इस प्रकार बतलाया है—ब्रह्मा दो प्रकारके होते हैं। किसी कल्पमें किसी योग्य जीवमें भगवच्छक्तिका आवेश होने पर वह जीव ही बह्मा होकर सृष्टि आदिका कार्य सम्पादन करते हैं। पुनः किसी कल्पमें वैसा योग्य जीव न मिलने पर और पूर्व कल्पवाले ब्रह्मा मुक्त हो जानेके कारण श्रीकृष्ण अपनी शक्तिका विभाग करके रजोगुणी ब्रह्माकी सृष्टि करते हैं। तत्त्वतः ब्रह्मा साधारण जीवसे श्रेष्ठ तत्त्व हैं, किन्तु साक्षात् ईश्वर नहीं है। और पूर्वोक्त शम्भुमें ब्रह्माकी अपेक्षा अधिक ईश्वरता है। ब्रह्मामें जीवके पचास गुण कुछ अधिक रूपमें एवं उसके अतिरिक्त पाँच गुण आंशिक रूपमें होते हैं। किन्तु शम्भुमें वे पचास गुण एवं अतिरिक्त पाँच गुण ब्रह्मासे भी अधिक परिमाणमें होते हैं। ब्रह्माकी भाँति आधिकारिक देवता भी दो प्रकारके होते हैं—विष्णुतत्त्व और पुण्यवान-जीव समूह। ब्रह्माकी आयु एक सौ वर्षकी होती है। इनके एक दिनमें मृत्युलोकके ४३२ करोड़ वर्ष होते हैं।

(३) शम्भु—शिवतत्त्वके सम्बन्धमें प्रथम पुरुषावतारके तत्त्वमें वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिंगो गुणसंवृतः।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा॥
(श्रीमद्भा॰ १०/८८/३)

अर्थात् शिव सदैव मायाशक्तिसे सम्बन्धयुक्त होते हैं। और तीनों गुणोंमें सम्यक्रूपसे आवृत होकर अवस्थित रहते हैं, वे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक त्रिविध अहंकारके रूपमें वर्त्तमान रहते हैं। श्रीब्रह्मसंहितामें कहा गया है—

क्षीरं यथा दधिविकारविशेषयोगात्
संजायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
य शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्य्याद्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/४५)

इस श्लोकका तात्पर्य श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके शब्दोंमें इस प्रकार है—शम्भु कृष्णसे भिन्न कोई एक स्वतन्त्र ईश्वर नहीं हैं। जो लोग शिवको एक स्वतन्त्र ईश्वर मानते हैं, वे भगवच्चरणोंमें अपराधी होते हैं। शिवका ईश्वरत्व गोविन्दकी ईश्वरताके अधीन होता है, इसलिए दोनों अभेद तत्त्व हैं। अभेद तत्त्वका लक्षण है कि दूध जैसे अम्लयोगसे दहीका रूप धारण करता है, उसी प्रकार विकार विशेषके योगसे ईश्वर एक पृथक् स्वरूप प्राप्त होते हैं, वे ही शम्भुतत्त्व हैं। यह शम्भु तत्त्व परतन्त्र होता है अर्थात् इस स्वरूपकी स्वतन्त्रता नहीं होती। मायाका तमोगुण, तटस्थाशक्तिका स्वल्पता गुण एवं चिच्छक्तिका अल्प ह्लादिनी मिश्रित सम्वित् गुण—इन तीनोंसे एकसाथ मिलकर एक विशेष प्रकारका विकार बनता है। उसी विकार-विशेषसे युक्त स्वांशभावाभास-

स्वरूप ही ज्योतिर्मय शम्भु लिंगरूप 'सदाशिव' तत्त्व हैं। इसी सदाशिवसे रुद्रदेव प्रकट होते हैं। सृष्टिकार्यमें उपादान रूपसे, स्थितिकार्यमें असुरोंका वध इत्यादि करनेके लिए तथा संहार-कार्यमें समस्त क्रियाओंका सम्पादन करनेके लिए स्वांश-भावापन्न विभिन्नांश रूप शम्भु श्रीगोविन्दके गुणावतार हैं। शम्भुको काल-पुरुष भी कहा जाता है। ये वैष्णवोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं—"वैष्णवानाम् यथा शम्भुः" (श्रीमद्भा॰) ये शिवतन्त्र इत्यादि विविध प्रकारके शास्त्रोंमें जीवोंके अधिकार भेदसे उन्हें भक्ति राज्यमें प्रवेश करानेके लिए सोपान स्वरूप धर्मकी शिक्षा देनेवाले हैं। कभी-कभी श्रीगोविन्दकी इच्छानुसार मायावाद एवं कल्पित आगमका प्रचार कर शुद्धभक्तिका संरक्षण और पालन करते हैं। शम्भुको जीवतत्त्व नहीं कहा जाता है। वे ईश्वर हैं, तथापि विभिन्नांशगत हैं।

लीलावतार

चतुःसन-नारद-वराह-मत्स्य-यज्ञ-नरनारायण-कपिल-दत्त-हयशीर्ष-हंस-पृश्निगर्भ-ऋषभ-पृथु-नृसिंह-कूर्म-धन्वन्तरि-मोहिनी-वामन-परशुराम-रघुनाथ-व्यास-बलभद्र-कृष्ण-बुद्ध-कल्कि-प्रभृतयः। एते प्रतिकल्पं प्रादुर्भवन्तीति॥७॥

लीलावतार

अनुवाद—चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष, हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, रघुनाथ, व्यास, बलभद्र, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि आदि लीलावतार कहलाते हैं। ये प्रति कल्पमें एक बार आविर्भूत होते हैं॥७॥

कणा-प्रकाशिका वृत्ति—लीलावतार-समूह प्रतिकल्पमें प्रायः एकबार अवतीर्ण होते हैं, अतः उन्हें कल्पावतार भी कहते हैं। ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहते हैं। प्रत्येक लीलावतारके विषयमें संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) चतुःसन—ब्रह्माके मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारको एक साथ चतुःसन कहा जाता है। इन्होंने आकुमार ब्रह्मचर्य पालन कर भगवद्भक्तिका प्रचार किया था। पूर्व जीवनमें ये ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी थे। बादमें पिता ब्रह्माकी कृपासे श्रीमन्नारायणके सौन्दर्य और वात्सल्य आदि गुणोंसे आकृष्ट होकर भगवद्भक्त हो गये। इनके ही शापसे जय-विजय तीन जन्मोंके लिए वैकुण्ठसे भ्रष्ट होकर हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि हुए थे।

(२) नारद—ब्राह्मकल्पमें इनका आविर्भाव हुआ था, किन्तु सभी कल्पोंमें इनकी विद्यमानता लक्षित होती है। ये देवर्षिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। सात्वत पंचरात्र (नारद पंचरात्र आदि)के रचयिता एवं प्रचारक हैं। श्रीमद्भागवतके अनुसार वे दासी पुत्र थे। पाँच वर्षकी आयुमें चतुःसन आदि ऋषियोंके सङ्ग और कृपा प्राप्तकर कठोर आराधनासे उन्हें भावावस्थामें भगवद्दर्शनकी एक झलक मिली। अपनी अवशिष्ट आयुमें भगवान्नामका कीर्त्तन और प्रचार करते हुए, आयुके शेष होने पर मृत्युके सिर पर पैर रखकर वैकुण्ठ गतिको प्राप्त हुए। ध्रुव, प्रह्लाद, प्रचेतागण आदि अगणित लोगोंने इनकी कृपासे भक्ति लाभ कर जीवन सफल किया।

(३) वराह—ब्राह्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ब्रह्माके नासाछिद्रसे तथा चाक्षुष मन्वन्तरमें जलसे आविर्भूत हुए थे।

पहलेको 'कृष्णवराह' कहते है, ये चतुष्पाद थे, इन्होंने रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया था। दूसरेको 'श्वेतवराह' कहते हैं। इनका श्रीमुख वराहके समान तथा नीचेका अङ्ग मनुष्य जैसा था, अतः इन्हें नृवराह भी कहते हैं। इन्होंने हिरण्याक्षका वध और पृथ्वीका उद्धार किया था।

(४) मत्स्य—इन्होंने स्वायम्भुव और चाक्षुष मन्वन्तरमें अवतीर्ण होकर क्रमशः प्रथम बार हयग्रीव नामक असुरका वधकर वेदोंका उद्धार किया था तथा दूसरी बार प्रियभक्त सत्यव्रत मुनिके ऊपर कृपा और वैवस्वत मनुकी रक्षा की थी।

(५) यज्ञ—रुचि नामक विप्रकी आकुति नामक पत्नीके गर्भसे इनका आविर्भाव हुआ था। इन्होंने देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरका पालन किया था।

(६) नर-नारायण—धर्मकी भार्या मूर्त्तिदेवीके गर्भसे नर-नारायण ऋषियोंका अविर्भाव हुआ था, इन्होंने आत्म-प्रसन्नता हेतु दूसरोंके लिए दुष्कर कठोर तपस्याका आचरण किया था। जो दूसरोंके लिए प्रेरणादायक और शिक्षाप्रद है।

(७) कपिल—कर्दमऋषि और देवहूतिके पुत्रके रूपमें अवतरित हुए थे। इनकी अङ्गकान्ति कपिल-वर्ण होनेके कारण, कपिल नामसे ही प्रसिद्ध हैं। इन्हीं कपिलदेवने ब्रह्मादि देवताओं, भृगु आदि ऋषियों, आसुरी नामक विप्र एवं माता देवहूतिको वेदोंके सारार्थ सम्वलित सेश्वर सांख्य तत्वका उपदेश किया था। (भागवत १-३में देखिये) ये सत्ययुगमें आविर्भूत हुए थे।

एक अन्य कपिलका भी वर्णन मिलता है, जो त्रेतायुगमें अग्निवंशज थे। इन्होंने महाराज सगरके साठ हजार

पुत्रोंको अपने शापसे जलाकर भस्म कर दिया था। इन्होंने ही वेद-विरुद्ध निरीश्वर-सांख्यका प्रवर्त्तन किया है, ये जीवतत्त्व हैं। इनकी लीलावतारोंमें गणना नहीं की गयी है। पद्मपुराणमें भी दो कपिलोंका वर्णन पाया जाता है। इन दूसरे कपिलने ही आसुरी नामक बौद्धको निरीश्वर सांख्यका उपदेश दिया था। आजकल इनका नास्तिक सांख्य ही षडदर्शनके अन्तर्गत पढ़ाया जाता है।

(८) दत्तात्रेय—अत्रिऋषि और अनसूयाके पुत्रके रूपमें इनका आविर्भाव हुआ था। इन्होंने अलर्क नामक विप्रको तथा प्रह्लाद, हैहय आदि राजाओंको आत्मविद्याका उपदेश किया था। इनका वर्णन श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड, आदित्य और मार्कण्डेय पुराणोंमें भी पाया जाता है। विष्णुके अवतार होने पर भी इनका मत वैष्णवमत नहीं है, ये श्रीबुद्धदेवकी भाँति स्वतन्त्र मत प्रचारक हैं।

(९) हयशीर्ष—ब्रह्माके यज्ञमें अश्वशिरा (घोड़ेके सिरवाले) रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने मधु और कैटभ नामक असुरोंका विनाश कर वेदोंका उद्धार किया था। निःश्वास त्यागके समय इनके नासा-छिद्रसे वेद लक्षणा-गाथाएँ उत्पन्न हुई थी। महाभारतके शान्तिपर्वमें इनका विशेष वर्णन पाया जाता है।

(१०) हंस—जलसे राजहंसके रूपमें आविर्भूत होकर इन्होंने नारदको भक्तियोग, भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य और जीवोंके स्वरूप-तत्व-सम्बन्धीय भागवत ज्ञानका उपदेश किया था।

(११) पृश्निगर्भ—ये स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अवतीर्ण हुए थे। महाराज उत्तानपादके सामने विमाता सुरुचिके वाक्य

वाणसे विद्ध ध्रुवकी तपस्या और स्तवसे सन्तुष्ट होकर इन्होंने ध्रुवको 'ध्रुवपद' प्रदान किया था।

(१२) ऋषभ—महाराज नाभि और उनकी पत्नी मेरु देवीके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर इन्होंने सभी आश्रमोंमें पूज्य पारमहंस धर्मका प्रचार किया था। इन्हीं ऋषभ देवके पुत्र महाराज भरत हुए, जिनके नामानुसार इस देशका नाम भारत हुआ है।

(१३) पृथु—मुनियोंकी प्रार्थनासे नास्तिक वेन राजाकी दक्षिण बाहुका मन्थन करनेसे ये आविर्भूत हुए थे। इन्होंने पृथ्वीको समतल कर उससे जीवन-धारणोपयोगी समस्त वस्तुओंका दोहन किया था। इन्होंने अर्चन-मार्गकी शिक्षा दी है। ये अत्यन्त सुन्दर थे।

(१४) नृसिंह—हिरण्यकशिपुके सभा-स्तम्भसे आविर्भूत होकर इन्होंने भक्त प्रह्लादकी रक्षा की थी तथा अपने तीक्ष्ण नखोंसे हिरण्यकशिपुका वध किया था। इनका अवतार सर्व-प्रसिद्ध हैं।

(१५) कूर्म—समुद्र-मन्थनके समय देवताओंके लिए इन्होंने अपनी पीठ पर मन्दार पर्वतको धारण किया था। उस समुद्र-मन्थनमें ऐरावत, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, विष और अमृत आदि उत्पन्न हुए।

(१६) धन्वन्तरि—समुद्र-मन्थनके समय ये अमृत-कलशको हाथमें लेकर प्रकट हुए थे। ये आयुर्वेदके प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

(१७) मोहिनी—समुद्र-मन्थनके समय निकले हुए अमृतको इन्होंने असुरोंको वञ्चित कर देवताओंको पिलाया था। कभी महादेव शंकरकी प्रार्थनासे भगवान्ने उन्हें इस मोहिनी रूपका

दर्शन कराया था। इनका दर्शन कर कामविजयी शंकर भी मुग्ध होकर इनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। अन्तमें भगवान्‌की कृपासे उनका मोह भङ्ग होने पर बड़े लज्जित हो स्तव-स्तुति करने लगे।

(१८) वामन—ये कश्यप-अदितिके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे। देवताओंकी प्रार्थनासे इन्होंने बलिसे छलपूर्वक स्वर्गका राज्य लेकर देवताओंको दिया था। वास्तवमें बलि महाराजसे अनित्य स्वर्ग-राज्य लेकर, उसे देवताओंको देना, बलिको ठगना नहीं, बल्कि बलिके ऊपर कृपा करना है। दो वामन अवतारोंका वर्णन पाया जाता है।

(१९) परशुराम—जमदग्नि ऋषि और रेणुकाके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे। इन्होंने देव-द्विज-विद्वेषी क्षत्रिय राजाओंका इक्कीस बार ध्वंसकर पृथ्वीको क्षत्रिय शून्य कर दिया था।

(२०) रामचन्द्र—ये त्रेतायुगमें महाराज दशरथ और कौशल्याके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे। इनके अवतारका कारण भू-भार हरण करना था। समुद्र-बन्धन, रावणादि असुरोंका संहार, (माया) सीताका उद्धार, सीताका त्याग, आदर्श प्रजापालन आदि इस अवतारके प्रसिद्ध कार्य हैं। बाल्मीकि रामायणमें इनका सविस्तार वर्णन है।

(२१) व्यास—महर्षि पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे इनका आविर्भाव हुआ था। अल्प बुद्धिपरायण मनुष्योंके कल्याणके लिए इन्होंने वेदोंका विभाग किया था। ये वेदान्त-दर्शन, अट्ठारह पुराण एवं महाभारत आदिके रचयिता हैं। मुख्यरूपसे इनकी रचनाओंमें श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ कृति है।

(२२) बलराम—वसुदेव-देवकीके पुत्र रूपमें सप्तम सन्तानके रूपमें आविर्भूत हुए थे। पुनः गोकुलमें रोहिणीके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए थे। श्रीकृष्णके भूभार हरणकार्यमें प्रधान सहायक थे।

(२३) श्रीकृष्ण—यदुकुलमें वसुदेव-देवकीके पश्चात् गोकुलमें नन्द-यशोदाके गर्भसे आविर्भूत हुए थे। कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज रूपमें प्रकटित होते हैं। इनका चरित्र सर्वत्र प्रसिद्ध है। विशेषकर श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्धमें इनका विस्तृत वर्णन है।

(२४) बुद्धदेव—कलियुगके प्रारम्भमें अत्यधिक नास्तिकों और अधार्मिकोंके बढ़ जाने पर, उनको मोहित कर जगतकी रक्षाके लिए गया प्रदेशमें अञ्जन या अजिनके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे। अग्निपुराण, वायुपुराण, स्कन्दपुराणादिमें इनका उल्लेख पाया जाता है। इन्होंने यज्ञोंमें दी जानेवाली पशुबलिका घोर विरोध किया था, ये दयाकी मूर्त्ति थे।

कुछ लोग कपिलवस्तुके राजा शुद्धोधनके पुत्र गौतमको ही भगवान् बुद्ध मानते हैं, किन्तु यह मत सर्वथा भ्रान्त है। गौतम बुद्ध जीव हैं। इन्होंने वेद-विरुद्ध नास्तिक बौद्ध-धर्मका प्रचार किया है। इन गौतम बुद्धने गयामें भगवद्‌बुद्धके आविर्भाव या आराधना स्थल पर बुद्धत्वकी प्राप्ति की थी। वहाँ आज भी बोधी-वट-वृक्षका दर्शन होता है।

(२५) कल्कि—कलियुगके अन्तमें शासकगणोंके अत्यन्त अधार्मिक और दस्यु प्रायः होने पर सम्भलपुर नामक ग्रामके विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होंगे। वैवस्वत मन्वन्तरके २८वें चतुर्युगके कलियुगमें बुद्ध और

कल्किका आविर्भाव होता है। कोई-कोई प्रत्येक कलियुगमें ही इनका आविर्भाव मानते हैं।

इन सभी लीलावतारोंके विस्तृत वर्णनके लिए श्रीमद्भागवत द्रष्टव्य है॥७॥

मन्वन्तरावताराः

अथ मन्वन्तरावताराः। यज्ञ-विष्णु-सत्यसेन-हरि-वैकुण्ठ-अजित-वामन-सार्वभौम-ऋषभ-विष्वकसेन-धर्मसेतु-सुदामा-यज्ञेश्वर-वृहद्धानवः ॥८ ॥

मन्वन्तरावतारा

अनुवाद—मन्वन्तरावतार १४ होते हैं। यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वकसेन, धर्मसेतु, सुदामा, यज्ञेश्वर और वृहाद्धानु॥८॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक-एक मन्वन्तरावतार होता है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(१) यज्ञ—आदिमनु स्वयम्भुवकी आकुति नामक कन्याके गर्भसे आविर्भुत हुए थे। एक बार समाधिस्थ स्वयम्भुव मनुको असुर और राक्षस मिलकर खा जानेके लिए तत्पर हुए। भगवान् यज्ञने याम-नामक देवताओंसे परिवेष्टित होकर राक्षसों एवं असुरोंका वधकर स्वायम्भुव मनुकी रक्षा की थी तथा स्वयंने इन्द्र बनकर स्वर्गका पालन किया था। लीलावतारोंमें भी इनका वर्णन किया जा चुका है।

(२) विभु—अग्निके पुत्र द्वितीय मनुके नामानुसार स्वा रोचिष मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिकी तुषिता नामक पत्नीके

गर्भसे इनका आविर्भाव हुआ था। इन्होंने अट्‌ठासी हजार कुमार ब्रह्मचारियोंको यम-नियमादि ब्रह्मचर्य व्रतकी शिक्षा दी थी।

(३) **सत्यसेन**—प्रियव्रतके पुत्र तृतीय मनुके नामानुसार उत्तम मन्वन्तरमें धर्मकी सुनृता नामक पत्नीके गर्भसे आविर्भूत हुए थे। इन्होंने सत्यजित नामक इन्द्रसे मित्रता कर मिथ्याभाषी, दुराचारी, दुष्ट, हिंसापरायण, यक्ष, राक्षस और निशाचरोंका विनाश किया था।

(४) **हरि**—उत्तम नामक तृतीय मनुके भ्राता चतुर्थ तामस मनुके नामानुसार तामस मन्वन्तरमें मेधसकी पत्नी हरिणीके गर्भसे 'भगवत् हरि' आविर्भूत हुए थे। इन्होंने ही ग्राहको मारकर गजेन्द्रका उद्धार किया था।

(५) **वैकुण्ठ**—तामसके सहोदर भ्राता पञ्चम मनु रैवतके नामानुसार रैवत मन्वन्तरमें शुभ्रकी विकुण्ठा नामक पत्नीके गर्भसे आविर्भूत हुए थे। लक्ष्मीदेवीकी प्रार्थनासे इन्होंने सत्यलोकके ऊपर एक नव-वैकुण्ठ लोकका निर्माण किया है।

(६) **अजित**—चाक्षुष मन्वन्तरमें वैराजके और देवसम्भूतिके पुत्रके रूपमें ये आविर्भूत हुए थे। इन्होंने समुद्र मन्थनके समय कूर्मरूपसे मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण कर देवताओंको अमृत पिलाया था।

(७) **वामन**—ब्राह्मकल्पमें तीन बार इनका आविर्भाव हुआ था। प्रथम बार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वास्कलि नामक दैत्यके यज्ञमें, दूसरी बार वैवस्वत मन्वन्तरमें धुन्धु नामक असुरके यज्ञमें और तीसरी बारे वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तम चतुर्युगमें कश्यप और अदितिके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए थे।

(८) सार्वभौम—सावर्णि मन्वन्तरमें देवगुह्य द्वारा सरस्वतीके गर्भसे आविर्भूत हुए थे। इन्होंने पुरन्दर (इन्द्र)से स्वर्ग-राज्य छीनकर बलिमहाराजको प्रदान किया था।

(९) ऋषभ—दक्ष-सावर्णि मन्वन्तरमें आयुष्मान् और अम्बुधाराके पुत्ररूपमें भगवद् अंशावतार ऋषभदेव आविर्भूत होंगे। ये सर्व समृद्धिशाली तीनलोकोंका राज्य अद्भुत नामक इन्द्रको भोग करायेंगे।

(१०) विष्वक्सेन—उपश्लोकके पुत्र ब्रह्म-सावर्णि नामक दशम मनुके नाम पर रखे गये ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें विश्वस्रष्टाके गृहमें विसूचीके गर्भसे भगवान्के स्वांशरूपमें इनका आविर्भाव होगा। वे शम्भु नामक इन्द्रके साथ मित्रता स्थापन करेंगे।

(११) धर्मसेतु—धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें और विधृताके पुत्रके रूपमें आविर्भूत होकर ये त्रिभुवनका पालन करेंगे।

(१२) सुधामा—रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें सत्यसह और सुनृताके पुत्र रूपमें आविर्भूत होकर उस मन्वन्तरमें लोकोंका पालन करेंगे।

(१३) यज्ञेश्वर—देवसावर्णि मन्वन्तरमें देवहोत्र और वृहतीके पुत्र रूपमें आविर्भूत होकर दिवस्पति नामक इन्द्रका अभीष्ट पूर्ण करेंगे।

(१४) वृहद्भानु—इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें वितानाके गर्भसे सत्रायनके पुत्र रूपमें आविर्भूत होकर कर्मतन्त्रका प्रचार करेंगे।

इन सभी मन्वन्तरावतारोंके विस्तृत वर्णनके लिए श्रीमद्भाभागत द्रष्टव्य है॥८॥

युगावताराः

अथ युगावताराः। शुक्ल–रक्त–श्याम–कृष्णाः ॥९ ॥

युगावतार

अनुवाद—अनन्तर युगावतार चार हैं—शुक्ल, रक्त, श्याम और कृष्ण ॥९ ॥

कणा–प्रकाशिका–वृत्ति—मन्वन्तरावतारगण जिस मन्वन्तरमें अवतीर्ण होते हैं, वे ही उन–उन मन्वन्तरोंके सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुगोंमें युगोपयोगी उपासना पद्धतिकी प्रतिष्ठाके लिए क्रमानुसार शुक्ल, रक्त, श्याम और कृष्ण नाम और वर्ण (अंगकी कान्ति) ग्रहण कर युगावतार होते हैं। यह साधारण नियम है; किन्तु कुछ युगोंमें इस नियमका अदल–बदल भी होता है। वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें स्वयंरुप कृष्ण आविर्भूत होने पर द्वापरके युगावतार श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार इसके ठीक बादवाले कलियुगमें पीतवरण श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रकटित होने पर कलिके युगावतार श्रीमन्महाप्रभुमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

(१) सत्ययुगावतार—सत्ययुगके युगावतारका नाम भगवान् 'शुक्ल' है। इनका श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार उल्लेख किया गया हैं—

कृते शुक्लश्चतुर्व्वाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः।
कृष्णजिनोपवीताक्षान् विभ्रद्दण्डकमण्डलू॥
(श्रीमद्भा॰ ११/५/२१)

अर्थात् सत्ययुगमें भगवान् शुक्लवर्ण चतुर्भुज, जटाजूट, वल्कल, कृष्णाजिन (मृगचर्म), उपवीत, अक्षमाला, दण्ड-कमण्डलु धारणकर ब्रह्मचारी वेशमें अवतीर्ण होते हैं। इस युगके मनुष्य शान्त, परस्पर मैत्री भावापन्न, उपकारी, समदर्शी होकर बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंके संयमपूर्वक 'ध्यानयोग'से भगवान्‌का भजन करते हैं। इस युगमें हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, परमात्मा आदि नामोंसे भगवान्‌को पुकारा जाता हैं।

(२) त्रेतायुगावतार—त्रेतायुगावतारके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्व्बाहुस्त्रिमेखलः।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्त्रुकस्त्रुवाद्यपलक्षणः॥
(श्रीमद्भा॰ ११/५/२४)

अर्थात् त्रेतायुगमें श्रीभगवान् रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिगुण मेखलायुक्त, पिंगल-केशविशिष्ट त्रयीवेदमूर्त्ति, स्त्रुकस्त्रुवाचिह्नयुक्त अवतीर्ण होते हैं। इस युगमें लोग यज्ञविधिसे भगवान्‌की आराधना करते हैं तथा विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय नामोंसे भगवान्‌को जानकर उनका कीर्त्तन करते हैं।

(३) द्वापरयुगावतार—द्वापर युगावतारके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥
(श्रीमद्भा॰ ११/५/२७)

अर्थात् द्वापरयुगमें भगवान् श्यामवर्ण, पीतवसन, चक्रादि आयुध (अस्त्र), श्रीवत्सादि चिह्न, कौस्तुभादि अलङ्कार ग्रहणकर अवतीर्ण होते हैं। तत्वज्ञानी मनुष्य महाराजोपलक्षणसे लक्षित उन परम पुरुषकी वैदिक और तान्त्रिक विधानोंके अनुसार अर्चन मार्गसे पूजा करते हैं।

(४) कलियुगावतार—श्रीमद्भागवतमें कलियुग अवतारके सम्बन्धमें कहा गया है—

नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा श्रुणु।
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्
यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(श्रीमद्भा॰ ११/५/३१-३२)

साधारणतया कलियुगावतारका नाम कृष्ण है और उनका वर्ण कृष्ण होनेके कारण इनका कीर्त्तन करना ही कलियुगका धर्म है, किन्तु गौराङ्ग महाप्रभु जिस कलियुगमें अवतीर्ण होते हैं, उस समय युगावतार महाप्रभुमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। ऐसा पहले ही लिखा गया है। इस श्लोकमें श्रीगौर-अवतारकी बात ही विशेषरूपसे कही गयी है। अर्थात् जो श्रीमुखसे कृष्ण-कृष्ण वर्णन करते हैं, जिनके अङ्गकी कान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर (पीतवर्ण) है, जो अङ्ग (श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्य), उपाङ्ग (श्रीवासादि भक्तवृन्द), अस्त्र (हरिनाम), पार्षद (श्रीगदाधर पण्डित, श्रीस्वरूप दामोदर आदि)के साथ अवतीर्ण होकर संकीर्त्तन यज्ञका प्रवर्त्तन करते हैं। कलियुगमें बुद्धिमान् पुरुष ऐसे गौराङ्ग महाप्रभुकी आराधना नाम-संकीर्त्तन यज्ञके द्वारा करते हैं॥९॥

आवेशादि अवतार-समूह

एषां मध्ये केचिदावेशाः केचित् प्रभावः केचित् वैभवाः केचित् परावस्था॥१०॥

आवेशादि अवतार-समूह

अनुवाद—इन युगावतारोंमें से (कल्पावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार) कोई आवेश, कोई प्राभव, कोई वैभव और कोई परावस्थ होते हैं॥१०॥

चतुःसन-नारद-पृथुप्रभृतय आवेशाः। मोहिनी-धन्वन्तरि-हंस-ऋषभ-व्यास-दत्त-शुक्लादयः प्राभवाः। ततोऽप्यधिकशक्ति-प्रकाशकाः वैभवाः, मत्स्य-कूर्म-नरनारायण-वराह-हयशीर्ष-पृश्निगर्भ-बलभद्र-यज्ञादयः। ततोऽप्यधिकाः परावस्था उत्तरोत्तरेषु श्रेष्ठा स्त्रयो नृसिंह-राम-कृष्णाश्च। कृष्ण एव स्वयं भगवान्। तस्मादधिकः कोऽपि नास्ति॥११॥

अनुवाद—चतुःसन, नारद, पृथु 'आवेश' हैं। मोहिनी धन्वतरि, हंस, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय और शुक्ल आदि 'प्राभव' हैं। प्राभवसे कुछ अधिक शक्ति प्रकाशक अवतरोंको वैभव कहते हैं। जैसे—मत्स्य, कूर्म, नर-नारायण, वराह, हयशीर्ष, पृश्निगर्भ, बलभद्र, यज्ञ आदि वैभव हैं। उनसे भी अधिक शक्ति प्रकाशकको परावस्थ कहते हैं। नृसिंह, राम और कृष्ण, ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ परावस्थ हैं। उनमें श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है॥११॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—शक्ति प्रकाशके तारतम्यानुसार भगवद् अवतारोंमें भी आवेश, प्राभव, वैभव और परावस्थ—चार प्रकारके भेद परिलक्षित होते हैं। जिन अवतारोंमें सर्वशक्तियोंका

अर्थात् षड़ऐश्वर्यका पूर्ण रूपमें प्रकाश होता हैं, उन्हें परावस्थ कहते हैं। उनसे कुछ न्यून शक्ति प्रकाश करनेवालोंको वैभव और उनसे भी कम शक्ति-प्रकाशकको प्राभव तथा जिनमें केवल एक शक्तिका प्रकाश होता है, उन्हें आवेश कहते हैं। चतुःसन, नारद, पृथु आदि आवेशावतार हैं। प्राभव दो प्रकारके होते हैं—(१) मोहिनी, हंस और युगावतार—ये अल्पकाल स्थायी प्राभव कहलाते हैं। (२) व्यास, धन्वन्तरि, ऋषभ आदि दीर्घकाल स्थायी प्राभवके अन्तर्गत हैं। मत्स्यकूर्मादि वैभव अवतार हैं। नृसिंह, राम और कृष्ण—ये तीनों परावस्थ होने पर भी नृसिंहसे राम और रामसे कृष्ण श्रेष्ठ हैं। श्रीनृसिंहदेवमें ऐश्वर्यका अत्यधिक प्रकाश होने पर भी रामचन्द्रमें ऐश्वर्यके साथ-साथ आंशिक रूपमें माधुर्यका भी प्रकाश देखा जाता है, इसलिए श्रीराम नृसिंहसे श्रेष्ठ हैं। पुनः श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा भी श्रीकृष्णमें ऐश्वर्य और माधुर्य परिपूर्णतम रूपमें प्रकाशित रहनेके कारण ये ही भगवत्ताकी चरम-सीमा हैं तथा श्रेष्ठ परावस्थ हैं।

साधारण रूपमें सभी भगवद्-अवतार हतारिगतिदायक (मारकर गति देनेवाले) होने पर भी श्रीकृष्ण विशेषरूपसे हतारिगतिदायक हैं। पूतना, शिशुपाल आदिकी गति देखकर ही इसका निर्णय किया जा सकता है। श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी, गुणमाधुरी, लीलामाधुरी और वेणुमाधुरी किसी अन्य भगवद्-स्वरूपमें नहीं देखी जाती। श्रीकृष्ण नामकी महिमा भी अधिक देखी जाती है। इस प्रकार कृष्ण ही परावस्थमें भी सर्वश्रेष्ठ हैं॥११॥

वासस्थान

तस्य वासस्थानानि पूर्व पूर्व मुख्यानि चत्वारि, व्रजे मधुपुरे द्वारावत्यां गोलोके च। कृष्णोऽपि सपरिवारो बलदेवसहितो व्रजे पूर्णतमः, मथुरायां पूर्णतरः; द्वारकायां प्रद्युम्नानिरुद्धाभ्यां परिवारसहितः पूर्ण। गोलोके पूर्णकल्पोऽपि वृन्दावनीयलीलात्वात् पूर्णतम–सजातीयः। पूर्वपूर्वषु माधुर्याधिक्यतारतम्या–दैश्वर्यस्याच्छादनतारतम्यमुत्तरोत्तेरेषु माधुर्यहासतारतम्यादै–श्वर्यस्य प्रकाशतारतम्यम् ॥१२॥

वासस्थान

अनुवाद—श्रीकृष्णके चार वासस्थान या धाम हैं—व्रज, मधुपुरी, द्वारका और गोलोक। ये क्रमशः एक–दूसरेसे श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण सपरिवार बलदेवके साथ व्रजमें पूर्णतम हैं, मथुरामें पूर्णतर हैं, परिवारवर्ग प्रद्युम्न–अनिरुद्धादिके साथ द्वारकामें पूर्ण हैं। श्रीकृष्ण गोलोकमें पूर्णकल्प होने पर भी गोलोककी लीला वृन्दावनकी लीलासे अभिन्न होनेके कारण अथवा जातिगत दोनोंमें साम्य होनेके कारण पूर्णतमकी स्वजातीय है। किन्तु परिमाणगत और वैचित्रीगत वैशिष्ट्यकी पूर्णतमरूपमें अभिव्यक्ति व्रजमें ही है। गोलोकसे द्वारकामें, द्वारकासे मथुरामें और मथुरासे वृन्दावनमें माधुर्यकी अधिक अभिव्यक्ति रहनेके कारण उन–उन स्थानोंमें ऐश्वर्यके आच्छादनका भी तारतम्य है। श्रीवृन्दावनसे मथुरामें, मथुरासे द्वारका और द्वारकासे गोलोकमें माधुर्य ह्रासका तारतम्य है। अर्थात् श्रीवृन्दावनसे मथुरामें माधुर्यकी कमी एवं ऐश्वर्यका प्रकाश अधिक है, मथुरासे द्वारकामें माधुर्यकी कमी और ऐश्वर्यका प्रकाश अधिक है, तथा द्वारकासे गोलोकमें माधुर्यकी कमी और ऐश्वर्यका प्रकाश अधिक रूपसे है॥१२॥

कणा–प्रकाशिका–वृत्ति—श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, वे परमपरात्पर–तत्त्व हैं। इनसे बढ़कर और कोई भी तत्त्व नहीं हैं। इनके चार वासस्थान या धाम हैं—व्रज, मथुरा, द्वारका और गोलोक। श्रीकृष्ण गोप अभिमानसे बलदेव सहित गोप–गोपी–गो रूप सपरिवार व्रजमें पूर्णतम रूपसे लीला करते हैं; मथुरामें वे क्षत्रियाभिमानसे यदुवंशियोके साथ पूर्णतर रूपमें तथा द्वारकामें क्षत्रिय अभिमानसे रुक्मिणी, सत्यभामा आदि महिषियों, प्रद्युम्न–अनिरुद्धादि पुत्र–पौत्रों तथा सपरिवार पूर्णरूपसे लीला करते हैं। गोलोककी लीला और वृन्दावनकी लीला समजातीय होनेके कारण गोलोककी लीला पूर्णतम (व्रज)की सजातीय लीलाका धाम है। ऐसा होने पर भी वृन्दावनकी लीलामें माधुर्यकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है तथा गोलोककी लीलामें ऐश्वर्यकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है। इस प्रकार माधुर्य एवं ऐश्वर्यके प्रकाशके तारतम्यसे लीलाओंके प्रकाशमें भी तारतम्य है। इस प्रकार गोलोकसे द्वारका, द्वारकासे मथुरा और मथुरासे वृन्दावनमें माधुर्यकी अधिक अभिव्यक्ति होती है तथा वृन्दावनसे मथुरा, मथुरासे द्वारका और द्वारकासे गोलोकमें ऐश्वर्यकी अधिक अभिव्यक्ति होती है। इस वृन्दावनका ही नामान्तर व्रज एवं गोकुल भी है। उस गोकुल धामके सम्बन्धमें ब्रह्मसंहितामें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

सहस्रपत्र कमलं गोकुलाख्यं महत्पदम्।
तत् कर्णिकार–तद्धाम तदनन्तांश–सम्भवम्॥

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने इस श्लोकका तात्पर्य इन शब्दोंमें प्रकाश किया है—विरजाके उसपार अशोक, अमृत और

अभयरूप त्रिपाद विभूति स्वरूप महावैकुण्ठ या परव्योम धाम नित्य अवस्थित है। उसके ऊपर अनन्त चिद्-विभूतियोंसे सम्पन्न परम माधुर्यमय गोकुल या गोलोकधाम है। अतः गोकुल ही सर्वोत्कृष्ट धाम है। गोलोक और गोकुलको अभिन्न मानकर कभी-कभी गोलोकको भी गोकुल कहा जाता है। यथार्थतः गोलोक गोकुलका 'वैभव या प्रकाश' है। क्योंकि गोकुल मधुर लीलाओंका स्थान है और गोलोक स्वकीय ऐश्वर्य लीलाओंका स्थान है। वही धाम ऊपरमें गोलोक या गोकुल और नीचे पृथ्वीलोकमें गोकुलके रूपमें देदीप्यमान है। श्रीसनातन गोस्वामीने सर्वशास्त्र मीमांसा-स्वरूप श्रीबृहद्भागवतामृतमें कहा है—"यथा क्रीड़ति तद्भूमौ गोलोकेऽपि तथैव सः। अध ऊर्ध्वतया भेदोऽनयोः कल्प्येत केवलम्।" अर्थात् प्रपञ्च स्थित गोकुलमें कृष्ण जैसी लीलाएँ करते हैं, गोलोकमें वैसी ही क्रीड़ाएँ करते हैं। गोलोक और गोकुलमें कुछ भी भेद नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि सर्वोर्द्ध्व गोलोकके रूपमें विराजित है और दूसरा प्रपञ्च स्थित गोकुलमें प्रकटित है। श्रील जीव गोस्वामीने कृष्णसन्दर्भमें गोलोकको वृन्दावनका प्रकाश माना है—"श्रीवृन्दावनस्य प्रकाशविशेषो गोलोकत्वम्; तत्र प्रापञ्चिक लोक-प्रकट-लीलावकाशत्वेनाव-भासमानः प्रकाशो गोलोके इति समर्थनीयम्।" श्रीरूपगोस्वामीने भी श्रीभागवतामृत नामक ग्रन्थमें गोकुल या गोलोकके सम्बन्धमें सब प्रकारकी शंकाओंका समाधान करते हुए लिखा है—"यत्तु गोलोक-नाम स्यात्तच्च गोकुल वैभवम्; तादात्म्यवैभवत्वञ्च तस्य तन्महिमोन्नतेः।" अर्थात् गोकुलका तादात्म वैभव ही गोलोक है। गोलोक गोकुलका वैभव-मात्र है। भौम-गोकुलमें कृष्णकी अखिल अनन्त लीलाएँ अप्रकट

रहने पर भी गोलोकगत गोकुल धाममें वे सभी नित्य प्रकटित हैं।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर श्रीचैतन्यचरितामृतके आदि लीला चतुर्थ परिच्छेदके सैंतालीस सं. पयार "परकीया भावे अति रसेर उल्लास। ब्रजबिना इहार अन्यत्र नाहि वास।" के अपने अमृतप्रवाह भाष्यमें लिखते हैं—बहुतसे लोग ऐसा समझते हैं कि श्रीकृष्ण नित्य गोलोक विहारी है; अल्पकालके लिए व्रजमें प्रकटित होकर उन्होंने परकीया भावसे लीलाएँ की हैं, किन्तु हमारे श्रीगोस्वामी-चरणोंका यह मत नहीं है। श्रीगोस्वामी-चरणोंके मतसे व्रज-विहार भी नित्य है, नित्य चिन्मय धाम गोलोकके नितान्त अन्तरङ्ग प्रकोष्ठका नाम ही व्रज है। जिस प्रकारसे प्रपञ्चावतारमें (भौमवृन्दावनमें) कृष्णकी लीला हुई हैं, उसी प्रकारसे सर्वोर्द्ध नित्यधाम व्रजमें भी उसी प्रकारकी लीलाएँ नित्य विराजमान है। व्रजमें ही परकीया रसका नित्य अवस्थान है। श्रील कविराज गोस्वामीने आदिलीला तृतीय परिच्छेदमें कहा है—"अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे। व्रजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे।" यहाँ 'व्रजेर सहित' इस पदसे स्पष्ट होता है कि चिन्मय गोलोक धाममें भी व्रज नामक एक अचिन्त्य मधुर पीठ है। उस अचिन्त्य पीठके साथ कृष्ण अपनी अचिन्त्य शक्तिके बलसे इस प्रपञ्च धाममें अवतीर्ण हुए थे। इस उक्त गोलोकके अन्तःपुरमें स्थित नित्य व्रजको छोड़कर परकीया रसकी अन्यत्र कहीं भी स्थिति नहीं है। क्योंकि वहाँ गोलोककी अपेक्षा भी अनन्त गुण अधिक रूपमें उत्कृष्ट रसका अवस्थान है। प्रकट व्रजमें (भौम वृन्दावनमें) अप्रकट व्रजकी विचित्रता जीवोंकी आंखोंसे भी लक्षित हुई है, केवल

यही रहस्य है। प्रपञ्च जगतमें प्रकट प्रकाश और अप्रकट प्रकाशके अतिरिक्त एक दृश्यमान प्रकाश भी होता है। जैसे—वर्त्तमान समयमें जबकि लीला प्रकट नहीं है, वृन्दावन इत्यादि धामोंमें साधारण लोगोंको जो कुछ दिखायी पड़ता है, उसे दृश्यमान प्रकाश कहते हैं॥१२॥

यस्या जले कोटि–कोटि–ब्रह्माण्डानि महाविष्णुरोमकूपगतानि, तस्या विरजायाः परिखाभूताया उपरि महावैकुण्ठलोकः। तस्योर्द्धभागे गोलोकः। तत्र गोलोकनाथः श्रीकृष्णो देवलीलः सपरिवारो वर्त्तते। तस्य विलासः परमात्मा परव्योमनाथो ब्रह्म च निर्विशेष, स्वरूपम्। गोलोकनाथस्य द्वितीयव्यूहो यो बलदेव स्तस्य विलासो महावैकुण्ठे संकषर्णः। तस्यांशः कारणार्णवशायी। तस्य विलासो गर्भोदशयी ब्रह्माण्डान्तर्यामी प्रद्युम्नांशः। तस्य विलासो तस्य विलासः क्षीरोदशायी अनिरुद्धांश। मत्स्यकूर्माद्यवतारः गर्भोदकशायिविलासः। अथ द्वारका–मथुरा–वृन्दावनाख्येधामत्रये श्रीकृष्णस्य नरलीलाधिक्यतारतम्यात् क्रमेण माधुर्य्यधिक्य–तारतम्यम्॥१३॥

अनुवाद—जिसके जलमें कोटि–कोटि ब्रह्माण्डसमूह तैरते रहते हैं। जो पहले महाविष्णुके एक लोमकूपमें बीजके रूपमें अवस्थित थे। उसी विरजाके उर्द्धस्थित महावैकुण्ठलोक, उसके और भी ऊपरी भागमें गोलोक धाम नित्य स्थित है। उस धाममें देवलीलाकारी गोलोकनाथ श्रीकृष्ण परिजनोंके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। उस धाममें देवलीलाकारी गोलोकनाथ श्रीकृष्ण परिजनोंके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। परमात्मा श्रीवैकुण्ठनाथ श्रीगोलोक नाथके विलास तत्त्व हैं और ब्रह्म उनका निर्विशेष स्वरूप है। गोलोकनाथ श्रीकृष्णके द्वितीय व्यूह बलदेव, महावैकुण्ठके संकर्षणके

विलास हैं। कारणाब्धिशायी महाविष्णु उस संकर्षणके अंश हैं। ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी गर्भोदशायी, कारणार्णवशायीके विलास एवं प्रद्युम्नके अंश हैं। क्षीरोदकशायी गर्भोदशायीके विलास हैं तथा अनिरुद्धके अंश हैं। मत्स्यकुर्म्मादि अवतार गर्भोदशायीके विलास हैं। कृष्णकी नरलीलाके आधिक्यके तारतम्यसे द्वारका, मथुरा और वृन्दावन तीनों धामोंमें क्रमशः माधुर्याधिक्यका भी तारतम्य हुआ करता है॥१३॥

कणा–प्रकाशिका–वृत्ति—देवीधामके अन्तर्गत चौदह भुवनोंके ऊपर क्रमशः और भी इनसे बड़े–बड़े पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और महत्तत्त्व रूप अष्टावरणोंके पश्चात् 'विरजा' प्रवाहित होती है। इसको कारणोदक भी कहा जाता है। विरजाके पारावारशून्य, अगाध–अथाह जलमें कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड तैरते रहते हैं, जैसे—अनन्त आकाशमें अनन्त सितारे झलमल करते रहते हैं। ये ब्रह्माण्ड समूह पहले महाविष्णुके लोमकूपमें बीज–स्वरूप स्वर्णाण्डके रूपमें अवस्थित रहते हैं। वे ही महाविष्णुकी अचिन्त्य शक्तिसे उनकी इच्छानुसार बृहद् रूपमें भासमान हैं। इसी विरजाके ऊपर सिद्धलोक अवस्थित है। सिद्धलोकका निचला भाग ब्रह्मसायुज्यका स्थान है, इसको निर्विशेष ब्रह्मधाम भी कहते हैं। भगवान्के निर्विशेष, निरञ्जन, निर्गुण स्वरूपके प्रति निष्ठावान साधकलोग सिद्धि प्राप्त करने पर अथवा भगवान्के द्वारा मारे गये असुर लोग इस लोकको प्राप्त होते हैं। इस लोकमें दुःखकी अनुभूति न रहने पर भी अप्राकृतिक आनन्दकी अनुभूति सम्भव नहीं है। इसलिए भक्तलोग भगवान्के दिये जाने पर भी इस गतिको कदापि स्वीकार

नहीं करते—"दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः" वैष्णवभक्तोंकी दृष्टिसे मुक्तिकी अभिलाषा पिशाचीके समान है, क्योंकि यह जीवके स्वरूपको निगल जाती है।

सिद्धलोकके ऊपरवाला भाग सदाशिवका धाम है। वहाँ वे श्रीपार्वती एवं अपने परिकरोंके साथ उन्मत्त होकर भगवान्‌का गुणगान कीर्त्तन करते हैं। इस सदाशिव धामके ऊपर महावैकुण्ठलोक अवस्थित है। इस लोकमें अखिल ऐश्वर्यके अधिपति भगवान् श्रीमन्नारायण श्री, भू और लीला आदि महालक्ष्मियोंके साथ अपने परिकरोंके द्वारा सेवित होते हैं। इनकी उपासना करनेवाले महा-सौभाग्यवान् जन सिद्धि लाभ करने पर इस धामको प्राप्त होते हैं। इस वैकुण्ठ धामके ऊपरी भागमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, श्रीमती सीताजी, लक्ष्मणादि भ्राताओं एवं हनुमान आदि सेवकोकें द्वारा अपने साकेत धाममें परिसेवित होते हैं। इस साकेत धामके ऊपर श्रीगोलोक धाम अवस्थित है। इन सबका सविस्तार वर्णन श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा रचित बृहद्‌भागवतामृत ग्रन्थमें उपलब्ध है।

श्रीब्रह्मसंहितामें श्रीगोलोकके प्रसंगमें कहा है—

चिन्तामणिप्रकरसद्मसुकल्पवृक्ष
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

(श्रीब्रह्मसंहिता)

अर्थात् लाखों कल्पवृक्षोंसे आवृत, चिन्तामणियोंसे निर्मित भवनोंमें कामधेनुओंका जो पालन करते हैं तथा सहस्र

लक्ष्मियोंके द्वारा आदरपूर्वक सेवित होते हैं, उन आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ। यहाँ चिन्तामणिका तात्पर्य चिन्मय रत्नोंसे है। मायाशक्ति जिस प्रकारसे जड़ीय पंचभूतोंके द्वारा जड़जगतकी रचना करती है, चिच्छक्ति भी उसी प्रकारसे चिन्मय उपकरण रूप चिन्तामणियोंसे चिज्जगत्‌की रचना करती है। साधारण कल्पवृक्ष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फल प्रदान करते हैं, किन्तु गोलोकके कल्पवृक्ष प्रेम–वैचित्र्य रूप अनन्त फलोंको प्रदान करते हैं। साधारण कामधेनु दुग्ध देती है; किन्तु गोलोककी कामधेनुओंसे शुद्धभक्तोंके लिए क्षुधा–तृष्णा निवृत्तिकारी प्रेम–निर्झर–प्रस्त्रवण रूप दुग्ध–समुद्र सदा झरता रहता है। आदरका तात्पर्य 'प्रेमसे पगकर' तथा लक्ष्मी शब्दका तात्पर्य गोपसुन्दरियोंसे है। आदि शब्दका तात्पर्य सबका मूलकारण है, यह मूलकारण श्रीगोविन्द ही हैं।

ऐसे सर्वोर्द्ध गोलोकमें गोलोकनाथ श्रीकृष्ण अपने परिवारके साथ नित्य ही देवलीला करते हुए विराजमान रहते हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि गोलोक श्रीकृष्णलीलाका सर्वोच्च स्थान होने पर भी उसमें चार प्रकोष्ठ हैं—प्रथम प्रकोष्ठ खाईके रूपमें इस धामके चारों ओर व्याप्त है। इसे गोकुल अथवा वृन्दावनका वैभव या प्रकाश भी कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्णकी स्वकीय भावयुक्त ऐश्वर्य भावमयी लीलाएँ होती हैं। यहाँ माधुर्यका अंश बहुत ही अल्प एवं ऐश्वर्यका गौरव अंश ही अधिक होता है, इस प्रकार यहाँ पर माधुर्य ऐश्वर्यके द्वारा ढका हुआ रहता है। इसके ऊपरी प्रकोष्ठका नाम द्वारका धाम है। यहाँ भौम द्वारकाकी भाँति सभी लीलाएँ नित्य प्रकटित रहती हैं, श्रीकृष्ण क्षत्रिय–अभिमानमें

राज–राजेश्वर रूपमें विराजमान रहते हैं। इसके ऊपर तृतीय प्रकोष्ठमें भौम मथुराकी भाँति श्रीकृष्णकी और भी कोटि–कोटि लीलाएँ नित्य प्रकटित रहती हैं। यहाँ द्वारकासे अधिक माधुर्य एवं कम ऐश्वर्य विद्यमान होता है। उससे ऊपर चतुर्थ प्रकोष्ठ वृन्दावन, व्रज अथवा गोकुल कहलाता है। यहाँ कृष्णकी परम माधुर्यमयी लीलाएँ नित्यकाल अवस्थित रहती हैं। यहाँ कृष्णकी परम माधुर्यमयी लीलाएँ नित्यकाल अवस्थित रहती हैं। यहाँ कृष्ण 'गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर' रूपमें गोप–गोपियोंके साथ नित्य विहार परायण रहते हैं। इससे बढ़कर तो बात ही क्या, इसके समान भी भगवान्‌का कोई धाम नहीं है। इस धाममें ऐश्वर्य अत्यधिक माधुर्यके द्वारा आच्छादित रहता है अथवा माधुर्यमें मिलकर उसीका रूप बन जाता है। गोलोकके ऊपरी तीन प्रकोष्ठ प्रकट लीलाके समय धराधाम पर अवतरित होते हैं, उस समय अघटनघटनपटीयसी योगमायाके प्रभावसे जगतके भक्त और साधारण जन भी उसे देख पाते हैं।

परव्योमनाथ श्रीनारायण उन श्रीगोलोकनाथके विलास–स्वरूप हैं। महावैकुण्ठके संकर्षण श्रीनारायणके द्वितीय व्यूह हैं। इनको महासंकर्षण भी कहते हैं। ये महासंकर्षण गोलोकनाथ श्रीकृष्णके द्वितीय व्यूहरूप बलदेव (मूल संकर्षण)के विलास हैं। कारणाब्धिशायी विष्णु महासंकर्षणके अंश हैं। ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी गर्भोदशायी कारणार्णवशायी विष्णुके विलास हैं। ये गर्भोदशायी और वैकुण्ठस्थ तृतीय व्यूहवाले प्रद्युम्नके अंश हैं। क्षीरोदशायी गर्भोदशायीके विलास हैं, ये वैकुण्ठवाले चतुर्थव्यूह अनिरुद्धके अंश हैं। मत्स्यकूर्मवराह आदि अनन्त अवतार–समूह गर्भोदशायीके विलास हैं॥१३॥

लीलातत्त्व

सा लीला द्विविधा; प्रकटाप्रकटा च। या युगपद् बाल्यपौगण्ड–कैशोर–विलासमयः सपरिकरस्य कृष्णस्यानन्तप्रकाशैः नित्यमेवा–प्रकटलीला वर्त्तन्ते ता एव एकेनैव प्रकाशेन सपरिवारेण श्रीकृष्णेन यदा प्रपञ्चे क्रमशः प्रकाश्यन्ते, तदा प्रकटेति। गमनागमने तु तत्तद्धामतः प्रकटलीलायामेवेतिविशेषः। प्रकट लीला च जन्मादि–मौषलान्ता प्रत्येकं ब्रह्माण्डसमूहक्रमेण तत्र तत्रस्थैर्दृश्यते। एकमेव वृन्दावनमेकैव मथुरा एकैव द्वारावती च ब्रह्माण्डकोटिसमूहमध्यगत–भारतभूमौ तद्वासिजनैर्दृश्यते। यथा ज्योतिश्चक्रस्थ–सूर्यकिरणावलीति। यथा ज्योतिश्चक्रस्थ एव सूर्य्य एकस्मिन् वर्षे पूर्वाह्लादिकं समाप्यान्यस्मिन् वर्षे प्रकाशयति कुत्रचिन्न प्रकाशयति च एवमेव कृष्णो निजधामस्थ एव प्रकटप्रकाशे एकस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे बाल्यादिलीलां समाप्यान्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे प्रकटयति अन्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे कामपि न प्रकटयतीति। प्रकटेऽपि बाल्यादिलीला नित्यमेव सच्चिदानन्दरूपाः किन्तु मौषलान्तलीला, महिषीहरण लीला चेन्द्रजालवत् कृत्रिमैव लीलान्तरस्य नित्यत्वसंगोपनार्थं ज्ञेया। तयोरुपासकाभावात्। किञ्च प्रकटलीलामध्ये वृन्दावनस्य मणिमयवृक्षभूम्यादित्वं तत्परिवारेणापि केनचिद्दृश्यते, केनचिन्न दृश्यते च, तदिच्छावशात्। प्रकट–लीलासमाप्त्यनन्तरं तु तत्रस्थजनेन भजनाधिक्येनात्युत्कण्ठायां वर्त्तमानायामेव दृश्यते। तत्रापि स्ववासनातदिच्छानुसाराभ्यामिति विवेकः। एवञ्च सर्वस्वरूपेभ्यो व्रजेन्द्रनन्दनस्य मुख्यत्वम् सर्वधामतो गोकुलस्यैव मुख्यत्वम्। चतुर्द्धा माधुरी तस्य व्रज एव विराजते। प्रेमक्रीड़योर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च॥१४॥

लीलातत्त्व

अनुवाद—भगवान्‌की लीलाएँ दो प्रकारकी होती हैं—प्रकट और अप्रकट। श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ प्रपञ्चके

अगोचर अनन्त प्रकाशोंमें जो युगपत बाल्य-पौगण्ड-किशोर-विलासमयी नित्यलीला करते हैं, उसे अप्रकट लीला कहते हैं। जब वही लीला एक ही प्रकाशमें सपरिवार श्रीकृष्णके द्वारा प्रपञ्च जगतमें यथाक्रमसे प्रकाशित होती है, तो उसे प्रकट लीला कहते हैं।

वृन्दावनसे मथुरा, मथुरासे द्वारकामें गमनागमन जो प्रकट लीलामें होता है, प्रकट लीलाकी यह एक विशेषता समझनी चाहिए। जन्मादिसे लेकर मौषल लीला तक प्रत्येक प्रकट लीला ब्रह्माण्डोंमें क्रमानुसार प्रकट होकर उन-उन ब्रह्माण्डवासी व्यक्तियोंके द्वारा दृष्टिगोचर होती है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें से प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक भारतभूमि होती है तथा उस भारतभूमिमें एक-एक वृन्दावन, मथुरा और द्वारका ये तीनों धाम रहते हैं। यहाँके निवासी ही प्रकट लीलाका दर्शन करते हैं। यह लीला ज्योतिश्चक्र स्थित सूर्यकी किरणोंकी भाँति अर्थात् एक ही ज्योतिश्चक्र स्थित एक ही सूर्य एक वर्षमें पूर्वाह्नादि समाप्त कर दूसरे वर्षमें उसी पुर्वाह्नादिका पुनः प्रकाश करते हैं। कहीं मध्याह्न, कहीं सायंकाल प्रकाश करते हैं, कहीं प्रकाश नहीं भी करते हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्ण अपने धाममें स्थित होकर भी प्रकट प्रकाशमें एक ब्रह्माण्डमें बाल्यादि लीला समाप्तकर, अगले दूसरे ब्रह्माण्डमें और फिर तीसरे ब्रह्माण्डमें प्रकट करते हैं। कभी दूसरे ब्रह्माण्डोंमें प्रकाश नहीं भी करते हैं। प्रकटमें बाल्यादि लीलाएँ प्रवाह रूपमें नित्य और सच्चिदानन्द स्वरूप हैं; किन्तु मौषल लीला और महिषीहरणलीला इन्द्रजालकी भाँति मिथ्या और कृत्रिम हैं। लीलाओंका नित्यत्व गुप्त रखनेकी दृष्टिसे ही उक्त प्रकारकी कृत्रिम लीलाएँ प्रकटित होती हैं। इसका कारण यह है कि इन लीलाओंके कोई भी उपासक

नहीं होते। इसके अतिरिक्त प्रकट लीलाके समय भगवान्‌की ही इच्छानुसार उनके परिकरोंमें से कोई-कोई मणिमय वृन्दावनादिको मणिमय रूपमें ही देख पाते हैं और कोई-कोई ऐसा नहीं भी देख पाते हैं। पुनः प्रकटलीलाके अवसान होने पर भी कोई-कोई साधक (तत्रस्थ) भजनकी प्रगाढ़ताके कारण अत्यन्त उत्कण्ठावश वर्तमान कालमें भी उस लीलाका दर्शन करते हैं। ऐसा होनेमें भक्तोंकी तीव्र-वासना और भगवान्‌की इच्छाको ही कारण समझना चाहिए। इस प्रकार सभी भगवद्स्वरूपोंसे श्रीव्रजेन्द्रनन्दनका ही श्रेष्ठत्व तथा सभी धामोंसे श्रीगोकुलका ही श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है। प्रेममाधुर्य, लीलामाधुर्य, वेणुमाधुर्य तथा श्रीविग्रहमाधुर्य—ये चारों माधुर्य व्रजधाममें ही विराजमान हैं॥१४॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—श्रीकृष्णलीला प्रकट और अप्रकट भेदसे दो प्रकारकी होती है। श्रीकृष्ण अपने नित्यपरिकरोंके साथ गोलोक धाममें नित्य विहार करते हैं। वे बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर लीलाएँ बड़ी ही मधुर होती हैं; किन्तु ये लीलाएँ बद्धजीवोंके लिए अगोचर होती हैं, इसलिए ये लीलाएँ अप्रकट लीला कहलाती हैं। किन्तु ब्रह्माजीके एक दिनमें अर्थात् एक कल्पमें वैवस्वत (सप्तम) मन्वन्तरके २८वें दिव्य चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें जब गोलोकविहारी श्रीकृष्ण गोलोकके अन्तःप्रकोष्ठ-स्थित व्रजके गो, गोप, गोपी और व्रजधाम (चौरासी कोस)के साथ अपनी बाल्य-पौगण्ड-किशोर-विलासमयी नित्यलीलाओंको इस धरा-धाममें प्रकट करते हैं। साथ ही अपनी अघटनघटनपटीयसी अचिन्त्यशक्ति योगमायाके प्रभावसे उस लीलाको तत्कालीन लोगोंको दिखलाते हैं, उसे प्रकट लीला कहते हैं।

प्रकट लीलाएँ इस प्रपञ्चमें क्रमसे प्रकटित होती हैं तथा क्रमसे अप्रकट भी होती हैं। अप्रकट लीलामें अनन्त लीलाओंका प्रवाह नित्य-निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, किन्तु प्रकट लीलामें उनमेंसे कुछ ही लीलाएँ प्रकट होती हैं। कल्पके भेदसे कुछ-कुछ लीलाओंमें कुछ वैशिष्ट्य भी देखा जाता है, वह वैशिष्ट्य अप्रकट लीलामें विभिन्न प्रकारके लीला-वैशिष्ट्योंके कारण ही होता है। किसी कल्पमें एक प्रकारकी लीला, कभी दूसरे कल्पमें दूसरी प्रकारकी लीला प्रकट होती हैं। जैसे—किसी कल्पमें श्रीकृष्ण द्वारका जानेके बाद व्रजमें लौटते नहीं हैं तथा दूसरे कल्पमें दन्तवक्र वधके पश्चात् व्रजमें लौटनेकी भी लीला है। यद्यपि ग्रन्थकारने अप्रकट लीलामें व्रजसे मथुरा, द्वारका और वहाँसे लौटना स्वीकार नहीं किया है, फिर भी अन्यत्र इसे नित्य लीलाके अन्तर्गत ही माना है। श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीबृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें माथुर-विरहका काल केवल तीन माहका माना है। महापुरुषोंके इन कथनोंमें भी गूढ़ रहस्य है, जो इन महापुरुषकी कृपाके बिना जाना नहीं जा सकता है। नित्य व्रजमें गमनागमन नहीं होने पर भी उसका भाव वर्त्तमान रहता है, वही विरहका कारण होता है। व्रजके वैभव गोलोकमें वही भाव कुछ स्थूल होता है। प्रकट व्रजमें व्रज और गोलोककी कुछ लीलाएँ मिश्रित होनेके कारण ऐसा विलक्षण दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार दोनों प्रकारकी उक्तियाँ ही अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त हैं।

ब्रह्माण्डगत प्रकट लीला भी दो रूपोंमें नित्य होती है। प्रथम कारण है कि यहाँ प्रवाह रूपमें नित्य रहने पर भी योगमायाके द्वारा सम्बन्ध विच्छिन्न होनेके कारण दृष्टिगोचर

नहीं होती तथा द्वितीय कारण, ये लीलाएँ जन्म, बाल्य, पौगण्ड और कैशोर आदिके क्रमसे, एकके बाद दूसरे और तीसरे ब्रह्माण्डमें सरकती जाती हैं। इस प्रकार लीलाओंके सरकनेका प्रवाह चलता रहता है। जिस ब्रह्माण्डमें यह लीला प्रकट होती है, पुनः उस ब्रह्माण्ड तक पहुँचनेमें एक कल्पका समय लग जाता है। अर्थात् एक कल्प बाद वही लीला उस ब्रह्माण्डमें पुनः प्रकट होती है, यह प्रवाह कभी बन्द नहीं होता। किसी न किसी ब्रह्माण्डमें अलात चक्रकी भाँति लीला चलती ही रहती है। इसीका उदाहरण ज्योतिश्चक्रसे दिया गया है। जैसे सूर्य कभी अस्त नहीं होते, पृथ्वीके किसी न किसी भागमें वे अवश्य प्रकाशित होते हैं। कहीं प्रातःकाल होता है, तो कहीं उसी समय दोपहर होती है और कहीं उसी समय आधी रात होती है। उसी प्रकार श्रीकृष्णकी नित्य लीलाएँ—किसी ब्रह्माण्डमें बाल्यलीला, किसी ब्रह्माण्डमें पौगण्ड लीला, किसी ब्रह्माण्डमें कैशोर लीला, किसी ब्रह्माण्डमें मथुरा लीला और किसी ब्रह्माण्डमें द्वारका लीला अविच्छिन्न गतिसे प्रवाहित होती रहती हैं। किन्हीं-किन्हीं ब्रह्माण्डोंमें उस समय लीलाएँ नहीं भी होती हैं, बादमें पहुँचती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डके अन्तर्गत एक-एक पृथ्वीलोक होता है। उस पृथ्वी पर एक-एक वृन्दावन, मथुरा और द्वारका धाम भी होता है और वहींके तत्कालीन लोग उन लीलाओंका दर्शन करते हैं। कभी-कभी प्रकट लीलाके अप्रकट होने पर भी वहाँके साधक भजन करते-करते अनर्थ-निवृत्तिके पश्चात् भावावस्थामें उपस्थित होने पर झलक रूपमें उन लीलाओंका दर्शन कर पाते हैं। ऐसे साधकोंमें बिल्वमंगल आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीश्रीलरूप-सनातन-रघुनाथ आदि षडगोस्वामीवर्ग, कृष्णदास कविराज और नरोत्तम ठाकुर नित्यलीलाके परिकर होनेके कारण इनका नाम उन साधकोंमें नहीं दिया गया है, उन लोगोंके नित्यलीला दर्शनके प्रचुर प्रमाण हैं।

मौषल लीला और महिषी-हरण लीला—ये दोनों लीलाएँ इन्द्रजालकी तरह मिथ्या और कृत्रिम हैं। केवल लीलाके नित्यत्वको छिपा रखनेके लिए ही ऐसी लीलाओंका प्रकटन होता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भागवतकी टीकामें एक उदाहरण दिया है, जिसके द्वारा इन्द्रजालका तात्पर्य समझा जा सकता है—किसी समय एक राजाके दरबारमें एक युवा मदारी आया। उसके साथमें उसकी युवा पत्नी एवं दो छोटे-छोटे बच्चे थे। राजदरबारमें रानी, परिवारके सदस्य एवं समस्त सभासद ठसा-ठस भरे थे। राजाके आदेशसे मदारीने दो बाँसोंको गाढ़कर उनके बीच पतली रस्सी बाँध दी। मदारी नीचे खड़े होकर ढोलक बजाने लगा, उसकी पत्नी सिर पर घड़ेके ऊपर घड़े रखकर अपने दोनों हाथोंमें एक बाँस लेकर धीरे-धीरे उस रस्सीके ऊपर चढ़कर तालमें ताल मिलाकर नृत्य करने लगी। रस्सीकी उस ऊँचाई पर भी बाँसको पृथ्वीके समानान्तर रखकर घड़ेको पकड़े बिना, पैरों व अंगोंकी विविध प्रकारकी कलाएँ दिखा रही थी। सभी दर्शक मुग्ध और विस्मित हो गये। इस प्रकारके खेलको समाप्त कर वह जब रस्सीसे नीचे उतरी, तब रानीने दौड़कर अपना बहुमूल्यवान सोनेका हार उसके गलेमें डाल दिया। इतनेमें मदारीके दोनों लड़के माँके उस हारको लेनेके लिए दौड़ आये। नर्तकीने अपने गलेसे हार उतारकर दोनों बच्चोंके हाथोंमें थमा दिया। दोनों उसे लेनेके

लिए लड़ने लगे, झट दोनोंने एक साथ अपने-अपने हाथसे तलवार उठायीं और एक ही साथ प्रहार किया। दोनोंके गले धड़से अलग हो गये। साथ ही साथ नर्तकी हाहाकार कर उठी और एक तलवारसे अपना सिर भी काट लिया। मदारी पास ही खड़ा था उसने अपनी पत्नी और पुत्रोंको मरा हुआ देख, साथ ही साथ छाती पीटता हुआ, दूसरी तलवारसे अपना गला भी काट लिया। यह घटना ऐसे क्षणभरमें हुई कि कोई कुछ न कर सका, सभी स्तब्ध बैठे रह गये। सभी बड़े दुःखी हुए, रानी दुखी होकर महलमें लौट गयीं। शोकमें सभा भङ्ग हो गयी।

दूसरे दिन सवेरे ही राजाको एक पत्र मिला। राजा पत्रको पढ़कर बड़े आश्चर्यान्वित हुए। पत्रमें लिखा था, "महाराज! हमारे प्रथम प्रदर्शनका उपहार तो मिल गया, किन्तु दूसरे प्रदर्शनका कोई भी पारितोषिक नहीं मिला। हम लोग मरे नहीं हैं, वह तो हमारा एक खेल था। यदि आपको विश्वास न हो, तो आप हमारे स्थान पर आकर हमें देख सकते हैं।" राजाने कौतूहलसे रानीको यह बात बतायी। फिर रानीको साथ लेकर मदारीके स्थान पर पहुँचते ही देखा—मदारी, उसकी पत्नी और दोनों पुत्र मुस्कराते हुए राजा और रानीका अभिनन्दन करनेके लिए आ रहे हैं। इसीको इन्द्रजाल कहते हैं। मदारी लोग यत्र-तत्र-सर्वत्र ऐसे प्रदर्शनोंके द्वारा जन-साधारणका मनोटरंजन करते हैं। फिर अघटनघटनपटीयसी शक्तिसे सम्पन्न सर्वशक्तिमान् भगवान्के लिए क्या सम्भव नहीं है? इसलिए मौषल लीलामें यदुवंशी लोग श्राप पाकर सरकण्डोंसे लड़ते हुए मारे गये थे, वह लीला इन्द्रजालिक लीला थी। योगमायाने ही जन साधारणको

इस अवास्तविक लीलाको दिखलाकर उसके माध्यमसे भगवत् परिकरोंको गोलोकमें पहुँचा दिया था।

महिषी–हरण लीला भी उसी प्रकार अवास्तविक लीला है। श्रीकृष्णके अप्रकट लीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् उनके पूर्वादेशानुसार अर्जुन कृष्णकी कुछ रानियोंको रथमें बैठाकर अपने साथ हस्तिनापुर ला रहे थे। बीच रास्तेमें गोप–दस्युओंने अकस्मात् उन्हें जबरदस्ती लूट लिया। अर्जुन अपने गाण्डीव–धनुषको उठाकर उसकी प्रत्यंचा भी चढ़ा न सके और वे गोप–दस्यु केवल लाठियोंसे आक्रमण कर अर्जुनके देखते–देखते उन्हें लेकर चले गये। योगमायाने इस अवास्तविक लीलाके माध्यमसे उन समस्त रानियोंको श्रीकृष्णके पास गोलोकमें पहुँचा दिया। यह लीला भी इन्द्रजालकी भाँति योगमायाकी कृत्रिम लीला है।

कृष्णकी कुछ ऐसी भी लीलाएँ हैं, जो नैमित्तिक लीला कहलाती हैं। जैसे—कुछ असुरोंको मारना। प्रत्येक कल्पमें ऐसी नैमित्तिक लीलाएँ विभिन्न प्रकारसे होती है। अन्यथा उसमें दोषापत्ति हो सकती है अर्थात् एक जीवका मुक्त होकर बार–बार बद्ध और मुक्त होना रूप दोषापत्ति हो सकती है।

श्रीब्रह्मसंहितामें—

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमतिदास्वाद्यमपि च।
स यत्र क्षीराब्धिः स्त्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजतिन हि यत्रापि समयः

भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये॥
(श्रीब्रह्मसंहिता ५/५६)

अर्थात् चिन्मयी लक्ष्मियाँ अर्थात् गोपियाँ ही कान्ताएँ हैं। परमपुरुष कृष्ण ही एकमात्र कान्त हैं, वृक्षमात्र ही कल्पतरु हैं, भूमि चिन्तामणि है, कथामात्र ही संगीत है, गमनमात्र ही नृत्य है, वंशी प्रियसखी है, वहाँकी ज्योति चिदानन्दमय है। परमचिद्पदार्थ मात्र ही आस्वाद्य है। वहाँ करोड़ों-करोड़ों सुरभियोंसे चिन्मय महा क्षीर-समुद्र स्त्रावित होता रहता है। जहाँ भूत और भविष्यरूप खण्डकाल रहित केवल नित्य पदार्थ रूप अखण्ड चिन्मयकाल वर्तमान रहता है। जहाँ मायाका धर्म पल भरके लिए भी प्रवेश नहीं कर सकता, उस श्वेतद्वीप रूप परमपीठ गोलोक धामका मैं भजन करता हूँ। कोई विरले साधु व्यक्ति ही उस धामको गोलोकके रूपमें जानते हैं। यहाँ प्रथम श्लोकके अन्तमें 'परममपि तदास्वाद्यमपि च' पदका एक गूढ़ तात्पर्य है। 'परमपि' शब्दमें सभी चिदानन्द विशेषोंमें श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं तथा 'तदास्वाद्यमपि' शब्दका तात्पर्य है—उनका आस्वाद्य तत्त्व। महाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिकाकी (१) प्रणय-महिमा; (२) राधिका कृष्णकी माधुरियोंको किस रूपमें आस्वादन करती हैं; (३) उस आस्वादनसे उनको कैसा सुख होता है? इन विषयोंका आस्वादन ही यहाँ आस्वाद्यका तात्पर्य है। इन्हीं तीन-वाञ्छाओंके पूर्ण आस्वादनके लिए श्रीकृष्ण ही गौराङ्ग रूप धारण करते हैं। श्रीकृष्णका गौराङ्ग रूप भी नित्य है, जो वृन्दावनके पास ही विराजमान श्वेतद्वीपमें नित्य विद्यमान हैं। श्रीगौरलीला श्रीकृष्णलीलाकी ही परिशिष्ट लीला कहलाती है तथा उसी

प्रकार श्वेतद्वीप भी व्रजका परिशिष्ट धाम है। श्रीगोस्वामी ग्रन्थोंमें इसे विशेषरूपसे देखा जाता है॥१४॥

भक्तवैशिष्ट्य

अथ भागवता स्ते च मार्कण्डेयोऽम्बरीषश्च वसुर्व्यासो विभीषणः। पुण्डरीको बलिः शम्भुः प्रह्लादो विदुरोद्धवौ। दालभ्यः पराशरो भीष्मः नारदाद्याश्च वैष्णवाः। सेव्यो हरिरमी सेव्या नो चेदागः परं भवेत्। एषां मध्ये प्रह्लादः श्रेष्ठ स्ततोऽपि पाण्डवाः श्रेष्ठास्तेभ्योऽपि केचिद् यादवास्तेभ्योऽप्युद्धवः। तस्मादपि व्रजदेव्यः। ताभ्योऽपि श्रीमद्राधेति॥१५॥

अनधीतव्याकरणश्चरणप्रवाणे हरेर्जनो यस्मात्।
भागवतामृतकणिका मणिकाञ्चनमिवानुस्यूता॥

भक्तोंका वैशिष्ट्य

अनन्तर भक्तोंका तारतम्य वर्णन कर रहे हैं—मार्कण्डेय, अम्बरीष, वसु, व्यास, विभीषण, पुण्डरीक, बलि, शम्भु, प्रह्लाद, विदुर, उद्धव, दालभ्य, पराशर, भीष्म, नारद प्रभृति वैष्णव ही भक्त हैं। श्रीहरिकी भाँति इन भक्तोंकी सेवा नहीं करनेसे परम अपराध होता है। इन भक्तोंमें प्रह्लाद श्रेष्ठ हैं। प्रह्लादसे भी पाण्डवगण, पाण्डवोंसे भी कोई-कोई यादव और उन यादवोंमें भी उद्धव श्रेष्ठ हैं। ऐसे उद्धवसे भी व्रजदेवियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं, पुनः उन व्रजदेवियोंमें भी श्रीमतीराधिका सर्वश्रेष्ठ हैं॥१५॥

जिन्होंने व्याकरणका अध्ययन नहीं किया है अथच जो श्रीकृष्ण भजनमें उन्मुख हैं, ऐसे व्यक्तियोंके लिए ही

श्रीभागवतामृत-कणिका ग्रन्थ मणिकाञ्चन न्यायकी भाँति संग्रथित हुआ है।

श्रीश्रीभागवतामृत-कणिकाका हिन्दी अनुवाद समाप्त॥

कणा-प्रकाशिका-वृत्ति—वेद, उपनिषदों तथा श्रीमद्भागवतादि निखिल शास्त्रोंमें कृष्णभक्तिको ही जीवोंके लिए अभिधेय तत्त्व निर्धारित किया गया है; किन्तु इसमें एक गूढ़ रहस्य है। भक्त चूड़ामणि महादेवजीने पार्वतीको इस विषयमें इंगित किया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्माद् परतरं देवि तदीयानाम् समर्च्चनम्॥
(लघुभागवतामृतधृत-पद्मपुराणवाक्य)

अर्थात् समस्त प्रकारकी आराधनाओंमें श्रीविष्णुकी आराधना ही सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु उनके भक्तोंकी आराधना उनसे भी अधिक श्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्‌ने भी ऐसा कहा है—

"मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः"
(श्रीमद्भा॰ ११/२१/१२१)

श्रीचैतन्यभागवतमें भी ऐसा कहा है—

कृष्ण-सेवा हइतेओ वैष्णव-सेवा बड़।
भागवत-आदि सब शास्त्रे कैल दृढ़॥

और भी—

सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्।
निःसंशयोस्तु तद्भक्त-परिचर्य्यारतात्मनाम्॥

एतेके वैष्णव सेवा परम उपाय।
भक्त–सेवा हैते से सवाई कृष्ण पाय॥

अर्थात् "वैष्णवसेवा कृष्णसेवासे भी बढ़कर है, श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंमें अति दृढ़तापूर्वक ऐसा कहा गया है।" भगवान् अच्युतकी सेवा करनेसे सिद्धि हो भी सकती है, नहीं भी दो सकती है—ऐसा संशय रहता है। किन्तु भक्तोंकी परिचर्या करनेवालोंको अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसलिए वैष्णवोंकी सेवा अवश्य करणीय है, इस वैष्णव सेवासे ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।

श्रीहरिभक्ति सुधोदयमें भी ऐसा ही कहा गया है—

अभ्यर्च्चयित्वा गोविन्दं तदीयान्नार्च्चयन्ति ये।
न ते विष्णु–प्रसादस्य भाजनं दाम्भिका जनाः॥

अर्थात् जो लोग गोविन्दकी पूजा तो करते हैं, किन्तु गोविन्दके भक्तोंकी पूजा नहीं करते, वे दाम्भिक हैं। वे कभी भी भगवत्कृपाके पात्र नहीं हो सकते। इसलिए वैष्णवोंके आनुगत्यमें ही विष्णुकी सेवा करना उचित है।

भक्तिके आविर्भावके तारतम्यसे भक्तोंमें भी तारतम्य होता है। मार्कण्डेय, अम्बरीष आदि भक्तोंसे प्रह्लाद महाराजकी श्रेष्ठताके विषयमें ऐसा उल्लेख है—

क्वाहं रजः प्रभव ईश! तमोऽधिकेऽस्मिन
जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा।

न ब्रह्मणो न च भवस्य न वै रमाया
यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः॥
(श्रीमद्भा॰ ७/९/२६)

अर्थात् प्रह्लाद महाराज भगवान् श्रीनृसिंह देवकी प्रार्थना कर रहे हैं—हे परमेश्वर! रजोगुणसे उत्पन्न तमोगुणसे भरपूर इस असुर कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाला कहाँ मैं और कहाँ आपकी दया! ब्रह्मा, शिव अथवा रमादेवीके मस्तक पर भी अनुग्रह सूचक आपके जो हस्तकमल अर्पित नहीं हुए, आज वही हस्तकमल मुझ जैसे सर्वथा अयोग्यके मस्तक पर अर्पित हुए हैं।

[प्रह्लादकी अपेक्षा भी श्रीरामके प्रेमीभक्त श्रीहनुमान जी अधिक श्रेष्ठ हैं। हनुमानमें सेवा-प्रवृत्ति प्रह्लादसे अधिक दीख पड़ती है। श्रीबृहद्भागवतामृतमें हनुमानको प्रह्लादसे श्रेष्ठ बतलाया गया है। और हनुमानसे भी पाण्डवलोग श्रेष्ठ हैं।] श्रीप्रह्लादसे पाण्डव लोगोंकी श्रेष्ठताके विषयमें लघुभागवतामृत (उ॰ख॰ १७ संख्याधृत—श्रीमद्भा॰ ७/१०/५०) श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीने कहा है—

"न तु प्रह्लादस्य गृहे परं ब्रह्म वसति, न च तद्दर्शनार्थं मुनयस्तदगृहान् अभियन्ति, न च तस्य ब्रह्म मातुलेयादिरूपेण वर्त्तते, न च स्वमेव प्रसन्नम्, अतो यूयमेव ततोऽप्यस्मत्तोऽपि भूरिभागाः इति भावः।"

अर्थात् नारदजी पाण्डवोंसे कहते हैं—अहो! प्रह्लादके घरमें स्वयं परब्रह्म निवास नहीं करते, न उनके घर पर उस परब्रह्मके दर्शनोंके लिए ऋषिमुनि ही आते हैं, न परब्रह्म उनके मातुलेय भ्राता आदि ही हैं और न वे परब्रह्म स्वयं

उन पर प्रसन्न होते हैं इसलिए आप पाण्डवलोग ही भूरि-भागा हैं, महासौभाग्यवान् हैं।

ऐसे पाण्डवोंसे भी यादवोंकी श्रेष्ठता अधिक देखी जाती है—

सदातिसन्निकृष्टत्वात् ममताधिक्यतो हरेः।
पाण्डवेभ्योऽपि यदवः केचित् श्रेष्ठतमा मताः॥
(लघुभागवतामृत उ॰ख॰ १८ संख्याघृत)

अर्थात् श्रीकृष्णके समीप सर्वदा निवास हेतु ममताधिक्यवश कोई-कोई यादव पाण्डवोंसे भी श्रेष्ठ हैं। उन यादवोंमें भी उद्धवजी सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रीमद्भागवतमें स्वयं कृष्ण कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
(श्रीमद्भा॰ ११/१४/१५)

अर्थात् "हे उद्धव! ब्रह्मा, शंकर, संकर्षण, लक्ष्मी एवं यह शरीर भी मुझे इतना प्रिय नहीं है, जितने तुम मेरे प्रिय हो।" ये उद्धव श्रीकृष्णका सर्वदा अनुगमन करनेवाले, सेवक, प्रतिनिधि, मन्त्री एवं प्रियसखा हैं। ऐसे उद्धवसे भी गोपियोंकी श्रेष्ठता भक्तप्रवर उद्धवकी प्रार्थनामें ही झलकती है—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य्यपथञ्च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
(श्रीमद्भा॰ १०/४७/६१)

अर्थात् अहो! मैं यदि व्रजसुन्दरियोंके श्रीचरणकमल सेवी वृन्दावनकी गुल्म-लता, औषधियोंमेंसे किसी एकके रूपमें जन्म ग्रहण कर सकूँ तो मैं अपनेको परम सौभाग्यवान समझूँगा। क्योंकि उन व्रजसुन्दरियोंने अत्यन्त दुस्त्यज अपने स्वजनों तथा आर्यपथका सर्वथा परित्याग कर श्रुतियोंके लिए भी अन्वेषणीय श्रीमुकुन्दके चरणकमलोंकी भलीभाँति सेवा की थी।

लक्ष्मियोंसे भी व्रजदेवियोंके श्रेष्ठत्वका वर्णन आदिपुराणमें मिलता है—

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मी र्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम॥

अर्थात् आत्मयोनि ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मीजी और मेरी आत्मा भी मेरी उतनी प्रिय नहीं है, जितनी गोपियाँ मेरी प्रिय हैं। ये गोपियाँ मेरी सबसे अधिक प्रियतमा है, इन गोपियोंमें भी श्रीमती राधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। लघुभागवतामृत (उ॰ख॰ ४५ संख्या)में पद्मपुराणके निम्नलिखित श्लोकमें ऐसा कहा गया है—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सेवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥

अर्थात् श्रीमती राधिका श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ प्रियतमा हैं। उनका श्रीराधाकुण्ड भी श्रीकृष्णको वैसा ही प्रिय है। समस्त गोपियोंमें वे ही श्रीकृष्णकी सर्वोत्तम प्राण-वल्लभा हैं।

श्रीरूपगोस्वामी भी इस विषयमें श्रीउपदेशामृतमें यह सिद्धान्त स्थापन करते हैं—

कर्मिभ्यः परितो हरेः प्रियतया व्यक्तिं ययुर्ज्ञानिन-
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्तभक्तिपरमाः प्रेमैकनिष्ठास्ततः।
तेभ्यस्ताः पशुपालपङ्कजदृशस्ताभ्योऽपि सा राधिका
प्रेष्ठा तद्वदियं तदीय सरसी तां नाश्रयेत् कः कृती॥

अर्थात् सब प्रकारके कर्मियोंमें भी चित्-तत्त्वका अनुसन्धान करनेवाले ज्ञानीजन कृष्णके प्रिय हैं, सर्वप्रकारके ज्ञानियोंमें भी ज्ञानविमुक्त शुद्धभक्त कृष्णके अधिक प्रिय हैं। सर्वप्रकारके भक्तोंमें भी प्रेमनिष्ठा सम्पन्न भक्त कृष्णको और भी अधिक प्रिय हैं। सर्वप्रकारके प्रेमनिष्ठ भक्तोंमें भी व्रजगोपियाँ अतिशय प्रिय हैं। उन गोपियोंमें भी श्रीमती राधिका कृष्णकी सर्वोत्तम प्रिया हैं। उनका कुण्ड भी कृष्णको वैसे ही अत्यन्त प्रिय है। अतएव ऐसा कौनसा सुकृति-सम्पन्न व्यक्ति होगा, जो श्रीराधाकुण्डका अनन्य भावसे आश्रय नहीं करेगा॥१५॥

इति श्रीभागवतामृतकणा ग्रन्थकी 'कणा-प्रकाशिका-वृत्ति'।